अनन्य

'हिंदी की नयी उड़ान'

मासिक पत्रिका

फरवरी-2023

(अंक-2)

अनन्य

‘हिंदी की नयी उड़ान’

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ. जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेंद्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ॰ हरीश नवल

भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

अनन्य
मासिक पत्रिका
फरवरी -2023 (अंक-2)
भारतीय कौंसलावास, न्यूयॉर्क की हिंदी पत्रिका

प्रबंध संपादक
अनूप भार्गव

संपादक
डॉ० जगदीश व्योम

कला संपादक
विजेन्द्र एस. विज

संपादन सलाहकार
डॉ० हरीश नवल

तकनीकी सलाहकार
बालेन्दु शर्मा दाधीच

संपादन सहयोग
स्वरांगी साने / आभा खरे

व्यवस्था
अमित खरे / गीता घिलोरिया

चित्रकार : अम्बादास
Hari Ambades Gade
Sediment of Time, 1960
60 x 75cm

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के अन्यत्र उपयोग हेतु लेखक / प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री हेतु सम्बंधित लेखक पूरी तरह से उत्तरदायी होंगे।

संपर्क
रचनाकार अपनी रचनाएँ अनन्य में प्रकाशनार्थ यहाँ भेजे : sampadak.ananya@gmail.com

पाठक अपनी प्रतिक्रियाएँ और सुझाव यहाँ भेजें
pratikriya.ananya@gmail.com

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप ऑडिओ रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

आइकॉन पर क्लिक करने से
आप विडियो रिकॉर्डिंग सुन सकते हैं

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

संपादकीय
डॉ॰ जगदीश व्योम 06

बासंती छंद : डा. अशोक अज्ञानी 08

गीत/नवगीत : रामकिशोर दाहिया 10
पाँच नवगीत

लेख : डॉ॰ राजकुमार सिंह 14
हिंदी की बोलियों का सिकुड़ता संसार

कविता : अभिनव शुक्ल / तीन कविताएँ 25

लेख : प्रगति टिपणीस 28
गोरिकी (गोर्की) का घर

कविता : बच्चा लाल 'उन्मेष' / दो कविताएँ 38

कहानी : सूर्यबाला 40
माय नेम इश ताता

व्यंग्य : शास्त्री नित्यगोपाल कटारे 52
नालायक होने का सुख

कविता : जया पाठक श्रीनिवासन / दो कविताएँ 55

लेख : विनय उपाध्याय 57
नव पर नव स्वर दे...

लघुकथा : डॉ. मालती बसंत 61
सम्मान / तोता रटंत

कला : वेद प्रकाश भारद्वाज 63
एक अंतहीन खोज / अम्बादास का कला जगत

चित्र / चित्रकार : भविष्या खोखर पृष्ठ भाग
ओपन विंडो / कागज़ पर ऐक्रेलिक रंग / 12 x 15 इंच

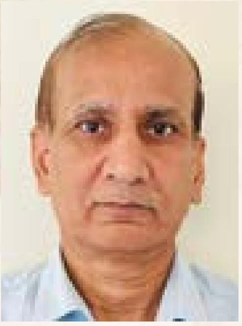

दो शब्द...

नवंबर की शुरुआत होते ही भोपाल से 'विश्वरंग' के बहाने साहित्य, कला और सांस्कृतिक चेतना के रंगों का खुमार वैश्विक फलक पर पूरे जोर–शोर के साथ अभी छाया हुआ ही था, कि हौले से प्रकृति की गोद में बसंत कुनमुनाने लगा। दुनिया के कोने–कोने से जो प्रवासी भारतीय 'विश्वरंग' और 'प्रवासी भारतीय दिवस' में सहभागिता के लिए भारत आये थे, उन सबका देशवासियों ने जी खोलकर स्वागत करने के लिए दिल्ली, भोपाल और इंदौर से लेकर अन्यान्य शहरों में साहित्यिक–सांस्कृतिक समारोहों के विशेष आयोजन किए। ऐसा लगा मानों बसंत की अगवानी करने के लिए ही दुनिया के कोने–कोने से प्रवासी भारतीय अपनी उस मातृभूमि पर आये हैं, जिसे प्रकृति की ओर से छह ऋतुओं का अनुपम उपहार मिला है।

'अनन्य' का यह अंक जब तक आपके पास पहुँचेगा, तब तक प्रवासी भारतीय वापस जा चुके होंगे और 12 वाँ 'विश्व हिंदी सम्मेलन' फिजी में शुरू हो चुका होगा। विश्व हिंदी सम्मेलन की सफलता के लिए समूचे अनन्य परिवार की ओर से शुभकामनाएँ और सभी को बधाइयाँ।

हिंदी की बोलियों- विशेषकर ब्रज, अवधी, बुंदेली, बघेली, कन्नौजी, भोजपुरी आदि आदि में छांदस कविताओं का जैसा बासंती काव्य संसार समाया हुआ है, वह इतना विस्तृत और जनप्रिय है कि उसे सिर्फ और सिर्फ महसूस किया जा सकता है। हिंदी की एक बड़ी चिंता यह भी है, कि लोक जीवन में प्रवहमान बोलियों की यह गंगा कहीं जल–विहीन न हो जाय, इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हिंदी की बोलियों में सृजन होता रहे, शब्दों का प्रयोग होता रहे, ताकि बोलियों का यह वृहद् संसार सिकुड़ने न पाये। यह हमारी जिम्मेदारी भी है और हिंदी के लिए बहुत ज़रूरी भी। हमारा बचपन जिन कविताओं को पढ़ते–पढ़ते बीता है, उन्हें हम चाहकर भी भुला नहीं सकते, बल्कि हमें उनसे समय–समय पर ऊर्जा मिलती रहती है। 'बसंत' को उन कविताओं के साथ मिलाकर देखने के हम एक प्रकार से अभ्यस्त से हो चुके हैं, कभी-कभी तो लगता है कि इन कविताओं के बिना बसंत हमारे पास आता ही नहीं है। न जाने कितने लोग कवि पद्माकर के इस छंद को गुनगुनाकर बसंत को महसूस करते हुए उसका आनंद ले लेते हैं–

'कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन–कलीन किलकंत है
कहै पद्माकर परागन में पौन हू में,
पानन में पिकन पलासन पगंत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस–देसन में,

देखो दीप–दीपन में दीपत दिगंत है
बीथिन में ब्रज में नबेलिन में बेलिन में,
बनन में बागन में बगरो बसंत है
–पद्माकर

लोकप्रिय कवि रसखान का यह सवैया छंद तो न जाने कितने फूलों की छवि ही नहीं पूरे वासंती दृश्य को ही हमारे सामने प्रस्तुत कर देता सा प्रतीत होता है–

अति लाल गुलाल दुकूल ते फूल अली! अति कुंतल रासत है ।
मखतूल समान के गुंज घरानि मैं किंसुक की छवि छाजत है ।
मुकता के कदंब ते अंब के मौर सुने सुर कोकिल लाजत है ।
यह आवनि प्यारी जु की रसखानि बसंत–सी आज बिराजत है ।
–रसखान

ऋतुओं के राजा बसंत के आते ही आमों पर बौर आ जाता है, कोयल कूकने लगती है फिर भी यदि नायिका का नायक प्रवास से बसंत में भी वापस उसके पास नहीं आता है, तो उसे निर्मोही कहने के सिवाय भला उसके पास चारा ही क्या है–

आयो आयो बसंत ऋतु राज गुइयाँ
अमवा बौरे कुहके कोइलिया
निरमोही नहीं मोरे संग गुइयाँ।

सुप्रसिद्ध बुंदेली के लोक कवि 'ईसुरी' की नायिका तो बसंत के आगमन की आहट सुनते ही अपने प्रिय को विदेश जाने से रोकने के लिए न जाने किस-किस से प्रिय को समझाने का अनुरोध करती है–

बागन भये बसंत अवैयाँ न जा बिदेसै सैयाँ
पीरी लता छता भईं पीरीं पीरीं ललित कलैयाँ
सूनी सेज नींद ना आबै बिरहिन गिनै तरैयाँ
तलफत रात रैन दिन सजनी का है राम करैयाँ
'ईसुर' कयं समझा देव इनखाँ परों तुमारे पैयाँ ।
–ईसुरी

बसंत की सुगंधित अमराइयों के बीच आप 'अनन्य' का स्वागत करें, पढ़ें और अपनी लिखित प्रतिक्रिया भेजें कि अनन्य का यह अंक आपको कैसा लगा, आपके पत्रों की प्रतीक्षा रहेगी।

–डॉ– जगदीश व्योम , संपादक अनन्य

डा. अशोक अज्ञानी

रामपाल खेड़ा, रायबरेली में जन्में एवं वर्तमान में लखनऊ, (उत्तर प्रदेश) में रह रहे डॉ. अशोक अज्ञानी प्रसिद्ध छंदकार और अवधी लोक साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत अशोक अज्ञानी की हिन्दी और अवधी में गीत, नवगीत, मुक्तक, ग़ज़ल, बाल साहित्य, एवं लोकगाथा की 12 पुस्तकें प्रकाशित; जिसमें अवधी लोकगाथा की 2 और अवधी गीत की 1 पुस्तक पुरस्कृत हैं।

ईमेल - krashok2005@gmail.com

बासंती छंद

-डा. अशोक अज्ञानी

1.

प्रेम की पवित्र अभिनन्दनीय वादियों में,
जाने कौन सी बयार पत्तियों को छू गयी
चाहत की चाँदनी सिहर गयी पोर-पोर,
आहत हुई तो ओस बनकर चू गयी
भावना के रंग भेद-भाव के शिकार हुए,
अपनों से दूर अपनों की खुशबू गयी
गाँव-गाँव गाते रहे भजन कबीरदास,
किन्तु किसी मन से न मैं गया न तू गयी।

2.

रूप का कलश छलका जो ऋतुराज मध्य,
कलियों को अलियों की तान छलने लगी
अनिल-अनल में चपल द्वंद्व हुआ मानो,
अंग-अंग एक सिहरन पलने लगी
एक ओर मीत दूजी ओर दूर मनमीत,
प्रीति कोरी देख गोरी हाथ मलने लगी
जल बीच कमल कहानी लिखने लगे तो,
जाड़े की जवानी देख आग जलने लगी

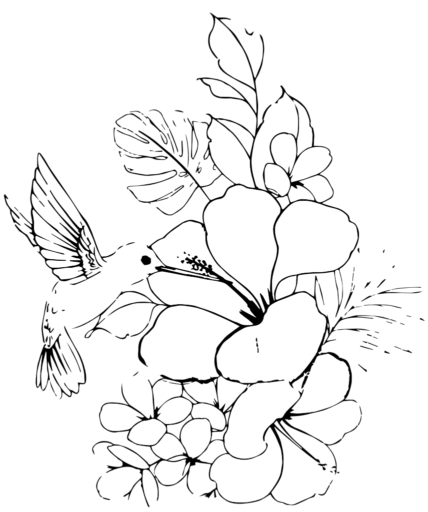

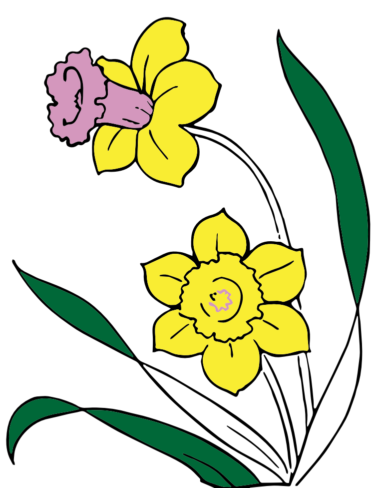

3.

गेहूँ को गुमान हुआ रूप और रंग वाला,
पछुआ पवन तब ताने कसती गयी
मटर चना उरद के लिए उदार हुए,
अलसाई अलसी भी मन बसती गयी
बौरहा बसन्त देख सन्त नहीं रहा मन,
नायिका की भाँति प्यासी लासी लसती गयी
पोर-पोर पीत परिधान मुसकाने लगे,
सरसों की हर एक डाल हँसती गयी।

4.

धीरे-धीरे आस मधुमास का विकास देख,
पतझड़ बनके जलन झरती रही
एक नये सच के अनेक अंकुरण हुए,
पाती-पाती प्रेम वाली मन हरती रही
फागुनी बयार और फाग की फुहार बीच,
धरती अधीर फिर धीर धरती रही
विधि के विधान में विविध रंग उग आये,
रंगों से प्रकृति-प्रिय मांग भरती रही।

5.

प्रेम का बसन्त यही कहता है बार-बार,
प्रेम से चमन और मन रँग लीजिए
आपसी तनाव का प्रभाव मिट जाये सब,
शुद्ध व्यवहार से सदन रँग लीजिए
धूल में भी फूल खिलें एकता-अखंडता के,
विद्वता बहार से बसन रंग लीजिए
तन रँग लीजिए बसन्ती भावना से फिर,
प्यार की फुहार से वतन रँग लीजिए।

6.

जब से लगा बसन्त याद आने लगे कन्त,
हूक लिए कूक-कूक कोकिला है गा रही
सजी हुई बाला, बाली लाल सुमनों की लाली,
पीली चुनरी है आली धरती को भा रही
धूप चिढ़ने लगी है भूख बढ़ने लगी है,
धीरे-धीरे ग्रीष्म शीत गुझिया है खा रही
फगुहारों वाली टोली फिरती है डोली-डोली,
लगता है रसघोली होली फिर आ रही।

7.

रूप कामना का वासना में ढलता रहा तो,
रस का पवित्र आदि-अन्त मर जायेगा
लौकिक लिबास में अलौकिक फँसेगा यदि,
सचमुच सादगी का सन्त मर जायेगा
चाहत कलुषता के रंग रँगने लगी है,
देख लेना कल कलावंत मर जायेगा
मरने न पायें प्रेम की पवित्र भावनाएँ
वरना ये प्रेम का बसन्त मर जायेगा।

-डा. अशोक अज्ञानी

रामकिशोर दाहिया

मध्य प्रदेश के गाँव लमकना, जिला कटनी में जन्में और मध्य प्रदेश शासन के स्कूल कटनी में प्रधानाचार्य पद पर कार्यरत, रामकिशोर दाहिया प्रतिष्ठित नवगीतकार हैं। गीत, नवगीत, नई कविता, हिन्दी ग़ज़ल, कहानी, लघु कथा, ललित निबंध एवं अन्य विधाओं में रचनाएँ करने वाले दाहिया जी के दो नवगीत संग्रह- 'अल्पना अंगार पर' और 'अल्लाखोह मची' सहित कई समवेत संकलनों में रचनाएँ प्रकाशित हैं। वाट्सएप एवं फेसबुक पर 'संवेदनात्मक आलोक' नामक नवगीत समूह का संचालन, अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

ईमेल - dahiyaramkishore@gmail.com

नवगीत

-रामकिशोर दाहिया

1. चींटियाँ

झुण्ड लेकर
चींटियाँ फिर
बेटियों-सी
द्वार भरने आ गयीं
भावना की
पंखुरी पर
शुभ लगुन के
फूल धरने आ गयीं।

चित्रकारी भी गज़ब की !
दिख रहीं हैं
देहरी के
द्वार भरती रीतियाँ
क्या भला इनसे लगेंगे
तरुणियों के
गीत मंगल
या वनों की वीथियाँ!
सरहदों को लाँघती
आँखें किसी से
चार करने आ गयीं
झुण्ड लेकर...

गंध की गोपित दिशा में
छिपकली-सी
हर जगह
दीवार पकड़े चल रहीं हैं
पंक्तियों में साँझ को
डूबी सड़क पर
धूल ओढ़े
बत्तियों-सी जल रहीं हैं
सज-सँवरकर
लड़कियाँ-

ज्यों गाँव का
बाजार करने आ गयीं
झुण्ड लेकर...

2. अम्मा

मुर्गा बाँग न
देने पाता
उठ जाती
अँधियारे अम्मा
छेड़ रही
चकिया पर भैरव राग
बड़े भिनसारे अम्मा

सानी-चाट
चरोहन चटकर
गइया भरे
दूध से दोहनी
लिये गिलसिया
खड़ी द्वार पर
टिकी भीत से
हँसी मोहनी
शील, दया,
ममता, सनेह के
बाँट रही उजियारे अम्मा
मुर्गा बाँग न...

चौका बर्तन
करके रीती
परछी पर
आ धूप खड़ी है
घर से नदिया
चली नहाने
चूल्हे ऊपर दाल चढ़ी है
आँगन के
तुलसी चौरे पर
आँचल रोज पसारे अम्मा
मुर्गा बाँग न...

पानी सिर पर
हाथ कलेबा
लिये पहुँचती
खेत हरौरे
उचके हल को
लत्ती देने
ढेले आँख देखते दौरे
जमुला-कजरा
धौरा-लखिया
बैलों को पुचकारे अम्मा
मुर्गा बाँग न ...

घिरने पाता
नहीं अँधेरा
बत्ती दिया
जलाकर धरती
भूसा-चारा
पानी-रोटी
देर-अबेर रात तक करती
मावस-पूनों
ढिंगियाने को
द्वार-भीत-घर झारे अम्मा
मुर्गा बाँग न...

3. धूप

बादलों की बोरियों से
तुलतुलाती धूप
राह,गलियों, खोरियों में
छुलछुलाती धूप

झील,झरने, नद,सरों को
स्वर्ण किरणें ढक रहीं
फूल का केसर उठाकर
पत्तियों पर रख रहीं
द्वार पर लड़की
ठिठक कर
खिलखिलाती धूप
बादलों की...

सेम, परबल, बर्बटी पर
तितलियों-सी झूलती
धूप दिन भर
बाग-वन में
गुलमुहर-सी फूलती
आँवले, अमरूद ऊपर
तिलमिलाती धूप
बादलों की...

साँझ सरकी साँप बनकर
रेत वन चट्टान से
पेट सेकर लौट आयी
खेत औ' खलिहान से
घोंसलों में सिमट बैठी
कुलबुलाती धूप
बादलों की...

4. हम ठहरे गाँव के

हम ठहरे गाँव के
लाल हुए धूप में
पाँव जले छाँव के
हम ठहरे गाँव के

हींसे में भूख-प्यास
लिये हुए मरी आस
भटक रहे जन्म से
न कोई आसपास
नदी रही और की
लट्ठ हुए नाव के
हम ठहरे...

पानी बिन कूप हुए
दुविधा के भूप हुए
छाँट रही गृहणी भी
इतना विद्रूप हुए
टिके हुए आश में
हाथ लगे दाँव के
हम ठहरे ...

याचना के द्वार थे
सामने त्यौहार थे
जहाँ भी उम्मीद थी
लोग तार-तार थे

हार नहीं मानें हम
आदमी तनाव के
हम ठहरे ...

5. एक नदी बहती है

मेरे भीतर फिर
लावे की
एक नदी बहती है
साँसों की
स्वर लहरी उसका
तेज-तपिश कहती है

उम्मीदों में
कहा-सुनी है
फिर भी चहल-पहल
चक्रवात के
बीच बनाये
हमने हवा महल
पहरे पर यह
धूप घरों की
टुकड़ों में रहती है
मेरे भीतर...

चिंताओं को
ओढ़-बिछाकर
भले गिने हों तारे
लेकिन
अँजुरी भर ले आये
दिन के हम उजियारे
रात बदल
जाती है दिन में
अनुकम्पा महती है
मेरे भीतर...

बाधाओं के
सभी रास्ते
खुद ही
बंद किये हैं
सीढ़ी दर सीढ़ी
चढ़ते हम
अनगिन द्वन्द्व जिये हैं
खुशी चाह के
कदम सफलता
आप स्वयं गहती है
मेरे भीतर ...

-रामकिशोर दाहिया

लेख

डॉ॰ राजकुमार सिंह

फतेहपुर (उ.प्र.) के गाँव अंजना भैरो में जन्में डॉ. राजकुमार सिंह इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिंदी में डी. फिल. हैं; फतेहगढ़ में दुर्गा नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग डॉ. राजकुमार सिंह हिंदी के प्रतिष्ठित एवं ख्यातिलब्ध विद्वान हैं; डॉ. सिंह की अब तक 'कन्नौजी शब्द कोश', 'कृपाराम का आचार्यत्व और कृतित्व', 'विचार विमर्श', 'साहित्य विमर्श', 'कबीर और डा. अम्बेडकर का समाज दर्शन' सहित 18 महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं; अनेक छात्र-छात्राओं ने उनके निर्देशन में पी-एच. डी. की है; 'शारदा', 'इडा', 'अक्षरालोक', 'देवपथ', 'प्रबोधिका' आदि पत्रिकाओं का आपने संपादन किया है तथा 'बचनेश ग्रंथावली', 'सूर शब्द सागर', 'अवधी शब्द-सम्पदा', 'भोजपुरी शब्द-सम्पदा', 'काव्य संचयन', 'सामान्य हिंदी' जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में सहयोगी संपादक के रूप में भूमिका निभाई है।

ईमेल - rksinghdnc@gmail.com

हिंदी की बोलियों का सिकुड़ता संसार

-डॉ॰ राजकुमार सिंह

"मानक हिंदी या खड़ीबोली हिंदी का विकास तो बहुत बाद में हुआ। इसके पूर्व अवधी और ब्रजभाषा जैसी बोलियों में हिंदी की विश्व प्रसिद्ध रचनाएँ सृजित हुईं। तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक इन बोलियों में अपार साहित्य रचा गया। अनेक सदियों तक ब्रजभाषा और अवधी काव्य भाषा के रूप में अपना प्रभुत्व स्थापित किये रहीं।...."

हिंदी बोलियों का समुच्चय ही हिंदी है, जो पूर्व में बंगाल और पश्चिम में पंजाब (अम्बाला) तक बोली जाती है। जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (भारत का भाषा सर्वेक्षण खंड–1, भाग–1) ने हिंदी के सामान्य अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है– "सामान्य रूप से लोगों का विश्वास यही है कि गंगा की समस्त घाटी में बंगाल और पंजाब के बीच अपनी अनेक स्थानीय बोलियों सहित, केवल एकमात्र प्रचलित भाषा हिंदी है।" (डॉ॰ मलिक मोहम्मद, राजभाषा हिंदी, 26) लिखते हैं– ''आज सामान्य अर्थ में हिंदी का तात्पर्य समूचे हिंदी प्रदेश की देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली संस्कृत बहुल खड़ी बोली के परिनिष्ठित रूप से ही है।'' प्रसिद्ध भाषाविद्

डॉ॰ उदय नारायण तिवारी (हिंदी भाषा का उद्गम और विकास) हिंदी को नागरी हिंदी (खड़ी बोली) कहते हुए उसके तीन रूप मानते हैं– उनके अनुसार एक रूप वह है, जिसमें विचार और भाव के प्रकाशन के लिए आवश्यकता पड़ने पर संस्कृत के शब्दों को ग्रहण करने में संकोच नहीं किया जाता, उसे ही खड़ी बोली, नागरी, हिंदी या हिंदी कहा जाता है। इसी को पुराने समय में हिन्दवी– हिन्दुई या हिंदी कहा जाता था। हिंदी या हिन्दवी नाम देने का श्रेय अमीर खुसरो को है। उन्होंने अपने 'खालिक वारी' कोश में इन शब्दों का प्रयोग किया है।

हिंदी का सामान्य प्रचलन तो आठवीं, नौवीं शताब्दी से ही हो जाता है; किंतु साहित्य रचना में खड़ी बोली अथवा नागरी हिंदी का प्रयोग 17वीं–18वीं शताब्दी से पुराना नहीं है| (–उदय नारायण तिवारी हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृष्ठ 210)। कविता में खड़ी बोली के सूत्र तो अमीर खुसरो और कबीर–काव्य से ही मिलने लगते हैं; लेकिन खड़ी बोली में गद्य का आरम्भ तो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से मानना ही औचित्यपूर्ण होगा; क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही इंशा अल्ला खाँ (रानी केतकी की कहानी), मुंशी सदासुख लाल (सुखसागर), लल्लू लाल(प्रेम सागर) और सदल मिश्र (नासिकेतोपाख्यान) ने गद्य रचनाएँ सर्जित की थीं। साहित्यिक मानक हिंदी को खड़ी बोली नाम देने का श्रेय लल्लू लाल को दिया जाना चाहिए। उन्होंने ही सर्वप्रथम इस अर्थ में खड़ी बोली का प्रयोग किया है। (–डॉ॰ धीरेंद्र वर्मा, ग्रामीण हिंदी, पृष्ठ–1)

खड़ी बोली या मानक हिंदी सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलंदशहर, अम्बाला, बिजनौर, मुरादाबाद तथा रामपुर आदि जनपदों में बोली जाने वाली देशी हिन्दुस्तानी (ग्रामीण) कौरवी या खड़ी बोली का परिष्कृत संस्कृत रूप है। यही नागरी या मानक हिंदी भारत की व्यावहारिक राष्ट्रभाषा, सैद्धांतिक राजभाषा, शिक्षण संस्थाओं, कचहरियों और समाचार पत्रों की भाषा है। मानक हिंदी या खड़ीबोली हिंदी का विकास तो बहुत बाद में हुआ। इसके पूर्व अवधी और ब्रजभाषा जैसी बोलियों में हिंदी की विश्व प्रसिद्ध रचनाएँ सृजित हुईं। तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक इन बोलियों में अपार साहित्य रचा गया। अनेक सदियों तक ब्रजभाषा और अवधी काव्य भाषा के रूप में अपना प्रभुत्व स्थापित किये रहीं। भक्तिकाल और रीतिकाल (1050–1375 और 1375–1700 संवत तक, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास) का समस्त साहित्य ब्रजभाषा, अवधी आदि बोलियों में सृजित

"भौगोलिक दृष्टि से हिंदी बोलियों का क्षेत्र अति विस्तृत है। 'पानी' तथा 'वाणी' की यह प्रकृति है कि ये कोस–कोस और दो–दो कोस में बदलते रहते हैं। यही कारण है एक हिंदी की अठारह प्रमुख बोलियाँ हैं तथा इन बोलियों की अनेक उपबोलियाँ हैं। "

हुआ। यदि इन बोलियों के साहित्य को हिंदी से निकाल दिया जाये, तो हिंदी को गर्व करने के लिए कुछ बचेगा नहीं।

हिंदी बोलियों का क्षेत्र अति विस्तृत है। डॉ० धीरेंद्र वर्मा के अनुसार– ''पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश का दक्षिणी भाग, पूरब में भागलपुर, दक्षिण पूरब में रामपुर तथा दक्षिण पश्चिम में खण्डवा तक पहुँचता है।'' उनके द्वारा दिए गए मानचित्र से इसे समझा जा सकता है। (देखें मानचित्र नं०–2) बोलियों के इस निर्धारित क्षेत्रफल से सभी विद्वान सहमत हैं, केवल ग्रियर्सन और डॉ० सुनीत कुमार चाटुर्ज्या को छोड़कर। ग्रिर्यसन ने अपने भारतीय भाषा सर्वेक्षण में राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी हिंदी को हिंदी क्षेत्र से बाहर की भाषा माना है, जो नितान्त औचित्यहीन है। उनके अनुसार पश्चिम में पंजाब के अम्बाला से लेकर पूर्व में बनारस तक और उत्तर में नैनीताल की तलहटी से लेकर दक्षिण में बालाघाट (मध्य प्रदेश) तक हिंदी की बोलियाँ बोली जाती हैं। उनके अनुसार बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी बोलियाँ नहीं हैं। इसी प्रकार सुनीत कुमार चाटुर्ज्या ने 'राजस्थानी भाषा' नामक ग्रंथ में 'राजस्थानी' को तो हिंदी माना है; किन्तु बिहारी हिंदी के बारे में वे बगलें झाँकते हैं, क्योंकि प्रारंभ में वे एक प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी थे; पर राजनीति में आने के बाद बंगाली हो गये। हिंदी बोलियों का क्षेत्र भारत के हिंदी भाषी दस राज्यों तक ही सीमित नहीं है; बल्कि भारत से बाहर अवधी और भोजपुरी, मॉरिशस, गुयाना, फिजी, त्रिनिदाद आदि देशों तक फैला हुआ है। दुर्भाग्य है कि आज प्रमुख रूप से सर्वत्र मानक हिंदी में ही साहित्य सर्जन हो रहा है और अन्य सभी क्षेत्रों में भी मानक हिंदी का ही प्रयोग हो रहा है। परिणामत: हिंदी बोलियाँ सिकुड़ती जा रही हैं।

भौगोलिक दृष्टि से हिंदी बोलियों का क्षेत्र अति विस्तृत है। 'पानी' तथा 'वाणी' की यह प्रकृति है कि ये कोस–कोस और दो-दो कोस में बदलते रहते हैं। यही कारण है एक हिंदी की अठारह प्रमुख बोलियाँ हैं तथा इन बोलियों की अनेक उपबोलियाँ हैं, जिसे निम्नलिखित तालिका से समझा जा सकता है–

हिन्दी बोलियाँ–

1– पूर्वी खण्ड

2– पश्चिमी खण्ड

1– पूर्वी खण्ड–

पूर्वी हिन्दी– अवधी, बघेली, छतीसगढ़ी।

अवधी–उपबोलियाँ– बिहारी, अवधी (बिहार (सारन) के मुसलमानों की अवधी), पूर्वी अवधी, उत्तरी अवधी, बैसवाड़ी, बनौघी।

बघेली–उपबोलियाँ– तिरहारी, गहोरा, जुड़ार, बनाफरी, मरारी, पोंवारी, ओझी, गोंडवानी, केवटी, कुम्भारी।

छत्तीसगढ़ी–उपबोलियाँ– सरगुजिया, सादरी, बैगानी, बिजवारी, कलंगा, भुलिया, सतनामी, कांकेरी, विलासपुरी, हलवी।

बिहारी हिंदी– भोजपुरी, मगही, मैथिली।

भोजपुरी– उत्तरी भोजपुरी (क) सखरिया (ख) गोरखपुरी

दक्षिणी भोजपुरी या आदर्श भोजपुरी

पश्चिमी भोजपुरी– (क) जौनपुरी (ख) बनारसी (ग) सोनपारी

नागपुरिया भोजपुरी

दो अन्य भेद–

मधेसी भोजपुरी

थारू भोजपुरी

मगही–उपबोलियाँ– केंद्रीय या आदर्श मगही, कुडमाली, खोंटाली, परगनिया तथा सदरी।

मैथिली–उपबोलियाँ– उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिणी, पूर्वी केंद्रीय, छिकाछिकी।

2– पश्चिमी खण्ड– पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी।

पश्चिमी हिंदी– खड़ी बोली, हरियाणी, दक्खिनी, बुन्देली, ब्रजभाषा, कन्नौजी।

खड़ी बोली–अन्य नाम– कौरवी, नागरी हिंदी, सरहिंदी, हिन्दोस्तानी।

हरियाणवी–अन्य नाम– बाँगरू, जाटू, चमरवा, देसहड़ी।

दक्खिनी– डॉ० उदयनारायण तिवारी आदि अनेक भाषाविज्ञानी पश्चिमी हिंदी की पाँच उपभाषाएँ ही मानते हैं– खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रजभाखा, कन्नौजी तथा बुन्देली; किन्तु डॉ० हरदेव बाहरी जैसे विद्वानों ने पश्चिमी हिंदी का छठवाँ भेद भी स्वीकार किया है। यद्यपि उन्होंने यह माना है कि दक्खिनी तथा खड़ी बोली या कौरबी में बहुत कम अंतर है।

बुन्देली–उपबोलियाँ– पँवारी, लोधाँनी, खटोला, भदावरी, बनाफरी, सोरिया, कुन्ड्री, निभट्टा, कोष्ठी, कुम्हारी, नागपुरी।

ब्रजभाषा या ब्रजभाखा, अन्तर्वेदी– उपबोलियाँ– भुक्सा, सिकरवाड़ी, ग्वालियरी, डाँगी, जादोवाटी आदि।

कनौजी, कन्नौजी–उपबोलियाँ– पीलीभीती, बदउआँ, शाहजहाँपुरिया, बंग्रही, मैनपुरिया, पछरुआ, तिरहारी, आदर्श कन्नौजी।

राजस्थानी हिन्दी– मारवाड़ी, मेवाती, मालवी, जयपुरी।

मारवाड़ी–उपबोलियाँ– सिरोही, मेरवाड़ी, मगरा, देवड़ावाटी, गोड़ावाट, शेखावटी, बाँगड़ी, टरर्की, गिरासिया ।

मेवाती–उपबोलियाँ– राठी, नहेड़ा, कठेर, गुजरी।

मालवी–उपबोलियाँ– राँगड़ी, धोलेवाड़ी, उमठवाड़ी, भोयारी, पारवी, डाँगी, सोडवाड़ी, कटियाई, मंदसौरी, रतलामी।

जयपुरी–उपबोलियाँ– तोरावाट, कठैड़ा, चैरासी, नागरचाल, राजावाटी, सिपाड़ी, किशनगढ़ी अजमेरी।

पहाड़ी हिन्दी– पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

पश्चिमी पहाड़ी– जौनसारी, सरमौरी, बघारी चमेआली।

मध्य पहाड़ी– कुमायुँनी, गढ़वाली।

पूर्वी पहाड़ी या नेपाली– पाल्या, दही, कुसवार, देनवार।

हिन्दी बोलियों का सिकुड़ता संसार

समाज और साहित्य जगत में हिंदी बोलियों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। बोलियों-सृजित साहित्य में निहित माटी की सौंधी, संदली सुगंध सबको अपनी ओर खींचती है। वह साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, मानव-जीवन-मूल्यों एवं आदर्शों का कोश है। श्री रामचरित मानस, पद्मावती, सूरसागर, बिहारी सतसई, रामचन्द्रिका आदि अनेक ग्रंथ इसके प्रमाण हैं। इन ग्रंथों की व्याप्ति केवल भारत में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व में है। अनेक विदेशी भाषाओं में इनके अनुवाद हुए हैं। अठारहवीं शताब्दी तक हिंदी साहित्य में अवधी और ब्रजभाषा बोलियों का ही साम्राज्य था; लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से जब खड़ी बोली हिंदी गद्य का विकास हुआ, इंशाअल्ला खाँ, सदल मिश्र, लल्लू लाल, मुंशी सदासुख लाल, राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद, राजा लक्ष्मण सिंह, स्वामी दयानंद सरस्वती, आदि तथा प्रारम्भिक काल के समाचार पत्रों (उदंत मार्तण्ड, बनारस अखबार, मार्तण्ड आदि) ने खड़ीबोली में गद्य के विकास को गति दी। फलत: खड़ी बोली (मानक हिंदी), शिक्षण संस्थाओं, कचहरियों और समाचार पत्रों एवं साहित्य की भाषा बन गई। ब्रज, अवधी आदि बोलियों का प्रभाव क्षीण होने लगा और धीरे–धीरे इन बोलियों का साहित्य में लोप-सा हो गया। यद्यपि छिटपुट इन बोलियों में रचनाएँ होती रहीं, पर वे व्यापक महत्व न पा सकीं। परिणामत: हिंदी बोलियाँ सिमटने-सिकुड़ने लगीं और अब तो साहित्य क्या गाँव की बोलचाल की भाषा में बोली का नितान्त अभाव दिखलाई पड़ता है। हिंदी बोलियों के सिकुड़ने के निम्न कारक उत्तरदायी हैं–

1– ग्रामीणों का शहरों–नगरों की ओर पलायन

2– हीन मानसिकता

3– रोजगार से न जोड़ना

4– शिक्षा का माध्यम न बनाना

5– कचहरियों की भाषा का न होना

6– समाचार पत्रों का न निकलना

7– पब्लिक स्कूलों की बाढ

8– साहित्य में उपेक्षा

9– हिंदी के विभिन्न संस्थानों की नकारात्मक भूमिका

10– प्रान्तीय एवं केंद्रीय सरकारों की उपेक्षा का शिकार

11– अन्य अनेक कारण

पंडित जवाहरलाल नेहरु ने किसी समय कहा था कि भारत में जितने व्यक्ति हैं, उतनी ही समस्याएँ हैं। आज भी समस्याएँ ज्यों की त्यों हैं और इन समस्याओं की जड़ है- बढ़ती जनसंख्या। कंक्रीट के जंगल खड़े हो रहे हैं, कृषि योग्य जमीन घटती जा रही है; क्योंकि जनसंख्या तो बढ़ रही है; पर जमीन नहीं, इस कारण से गाँव में परिवारों के सामने जीवन निर्वाह का संकट सुरसा की तरह मुँह फैलाता जा रहा है अत: ग्रामीण युवक रोजी–रोटी की तलाश में नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। नगरों में जाकर नागरिक बनने की चाह में मातृभाषा (बोली) को भूलने का, न बोलने का

सप्रयास प्रयत्न करते हैं। शनै: शनै: उनकी भाषा बदलती जाती है और हिंदी बोली सिकुड़ती जाती है। गाँव से निकलकर शहरों, नगरों में सरकारी या अर्द्ध-सरकारी नौकरीपेशा लोगों में 90 प्रतिशत लोग नगर या शहर के ही होकर रह जाते हैं और भूल जाते हैं, अपनी जन्मजात

संस्कार की भाषा को। वे इस हीन मानसिकता से भी बोझिल होते हैं कि हम गाँव के तो हैं, पर हमें कोई गँवार न समझे। अत: वे खड़ी बोली और शुद्ध खड़ी बोली न बोल पाने पर खिचड़ी हिंदी बोलने में ही गौरव की अनुभूति करते हैं। यह प्रवृत्ति गाँव के अनपढ़ या अल्प-शिक्षित नवयुवकों या व्यक्तियों में ही नहीं, बल्कि पढ़े-लिखे शिक्षित लोगों में भी पायी जाती है। वे अपनी मातृभाषा को बोलने में संकोच करते हैं। भोजपुरी भाषी इसके अपवाद कहे जा सकते हैं और यही कारण है कि आज भोजपुरी अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक विकसित हो रही है। ब्रजभाषा और अवधी आदि बोलियाँ आज संकट के दौर से गुजर रहीं हैं। यह मानसिकता बोलियों के सिकुड़ने का बहुत बड़ा कारण है।

बढ़ती जनसंख्या के कारण भयंकर बेरोजगारी की समस्या है। बेरोजगारी के अन्य अनेक कारण भी हैं । उन कारणों में से एक कारण यह भी है कि भारतीयों की मातृभाषा (बोलियों) को रोजगारपरक नहीं बनाया गया है या उन्हें रोजगार से नहीं जोड़ा गया है। अत: रोजगार का इच्छुक युवक अपनी मातृभाषा को छोड़कर उस भाषा की ओर भागता है, जो उन्हें रोजगार प्रदान कर सकती है। परिणामत: मातृभाषा अर्थात बोलियों का सीमित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। बोलियों के साथ सबसे बड़ा अन्याय यह हुआ कि उन्हें शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया गया। सरकार को चाहिए कि कम से कम हाईस्कूल या इंटरमीडिएट तक के सभी विषयों की शिक्षा वहाँ की मातृभाषा में दी जाने की शिक्षा प्रणाली लागू करे, तभी बोलियाँ जीवित और संरक्षित रह सकेंगी। कुछ विश्वविद्यालयों में भाषा-अध्ययन के अंतर्गत बोलियाँ पढ़ाई जाती हैं; किन्तु इतना पर्याप्त नहीं है। होना यह चाहिए कि बोलियों में पढ़ाया जाये।

भारत आज विश्व का स्वतंत्र और सबसे बड़ा लोकतंत्र है; किंतु भाषा की दृष्टि से हम निरंतर पराधीनता की ओर तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। अंग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूल, नगर, शहर व कस्बों तक ही सीमित नहीं रहे, वे गाँवों में भी पाँव पसार रहे हैं। अर्थ-दोहन की दृष्टि से अंगरेज़ी-माध्यम के स्कूल खुल रहे हैं और हम कुछ मानसिक पराधीनता के कारण, कुछ रोजगार के लिए, कुछ जैंटलमैन बनाने के लिए अपने बच्चों को इन स्कूलों में ही पढ़ने के लिए भेजते हैं। आज केवल वही लोग मन मसोसकर अपने बच्चों को हिंदी माध्यम या भारतीय प्राइमरी विद्यालयों में पढ़ने के लिए भेजते हैं, जो किसी प्रकार से भी अंग्रेजी स्कूलों का शुल्क भरने में असमर्थ हैं। परिणामत: हिंदी और हिंदी की बोलियाँ सिकुड़ती जा रही हैं। मेंढक की तरह फुदकते हुए ये पब्लिक स्कूल भारतीय भाषा, भारतीय संस्कृति के लिए बहुत बड़ा खतरा हैं ।

किसी भी भाषा या बोली को किसी भी देश में, किसी भी परिस्थिति में, किसी भी समय पूर्ण स्थापित किया जा सकता है। यहाँ तक की मृतप्राय भाषा को जीवित और सामर्थ्यवान बनाया जा सकता है, यदि उस भाषा या बोली का प्रयोग तीन स्थानों पर अनिवार्य कर दिया जाये– शिक्षण संस्थानों, कचहरियों

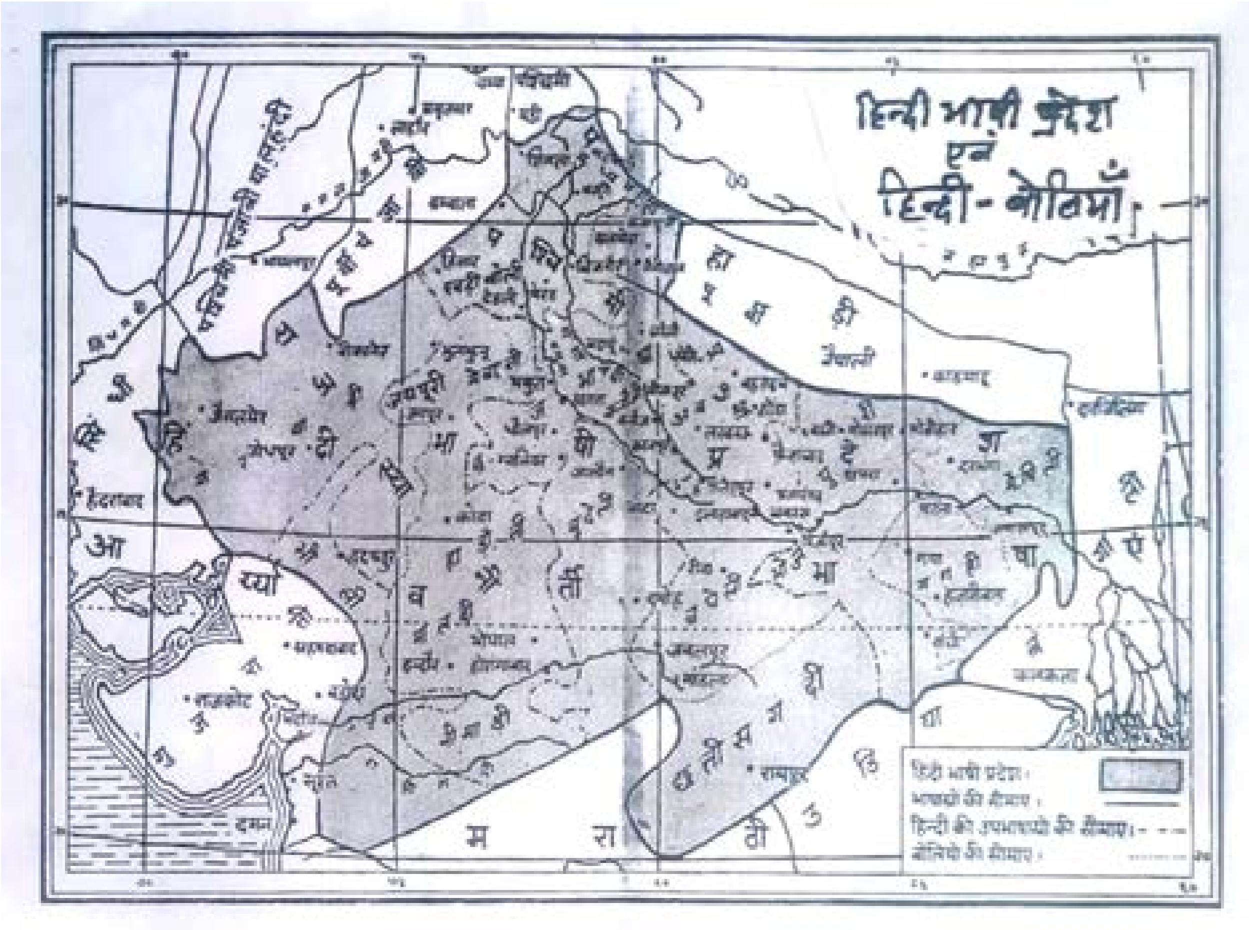

और समाचार पत्रों में। दुर्भाग्य है कि हिंदी बोलियों को इन तीनों ही स्थानों से खदेड़ दिया गया है। आयरलैंड में 'गैलिक भाषा' मर चुकी थी; परंतु आयरलैंड के स्वतंत्र होते ही वहाँ की सरकार ने अपना सारा कार्य 'गैलिक भाषा' में आरंभ किया और गैलिक भाषा पूर्ण विकसित हुई। इसी प्रकार इज़राइल में 'हिब्रू' भाषा भी मर चुकी थी; किंतु इज़राइल के स्वतंत्र होते ही वहाँ की सरकार ने अपना सारा कार्य हिब्रू' में शुरु किया। फलत: मरी हुई भाषाएँ जीवित हो उठीं; पर भारत ऐसा नहीं कर सका।

शिक्षा, जहाँ एक और छात्र-छात्राओं की आंतरिक शक्तियों के उद्घाटन का स्रोत है, वहीं विद्यार्थियों की सर्वांगीण उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन भी है। ऐसा तब संभव है जब शिक्षा उनकी मातृभाषा या बोली में दी जाये; तभी बालक बालिकाओं की प्रच्छन्न शक्तियों का विकास होगा और तभी वे अपने वर्तमान या भविष्य को यथोचित रूप से सँवार सकेंगे; पर किसी भी हिंदी-भाषी प्रदेश में वहाँ की बोली को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया गया है यद्यपि नयी शिक्षा नीति में मातृभाषा में शिक्षा दी जाने की व्यवस्था की गयी है। अपवाद को छोड़ दिया जाये तो किसी भी बोली में किसी प्रतिष्ठित समाचार पत्र का प्रकाशन नहीं हो रहा है। यद्यपि कुछ पत्रिकाएँ इस दिशा में सक्रिय हैं; किंतु वे बोलियों को संरक्षित

करने में समर्थ नहीं हैं। कचहरियों के कामकाज की भाषा में बोलियों को कभी महत्त्व नहीं दिया गया। अत: बोलियों का भविष्य अंधकार में है। वर्तमान में हिंदी-साहित्य-रचना में बोलियों की नितांत उपेक्षा हो रही है, जबकि हिंदी साहित्य के भक्ति काल और रीतिकाल का समस्त साहित्य ब्रजभाषा या अवधी में ही सृजित हुआ है। आधुनिक काल में खड़ी बोली या मानक हिंदी के प्रवाह ने इन्हें पीछे धकेल दिया है। आज हिंदी का प्रतिष्ठित कवि या लेखक बोलियों को अछूत समझता है। वह समझता है कि अगर मैंने बोली को छू लिया तो समीक्षक या सहृदय उसे लोक रचनाकार कहकर दूसरे दर्जे का साहित्यकार घोषित कर देंगे। क्या विडंबना है; जिस अवधी को महाकवि तुलसीदास, जायसी, कुतुबन, मंझन आदि ने तथा ब्रजभाषा को सूरदास, तुलसीदास, रसखान, मीराबाई, केशव, बिहारी आदि ने विश्व स्तर पर स्थापित किया; आज वे बोलियाँ पानी माँग रहीं हैं। अब तो इन बोलियों के संकुचन का नहीं, वरन अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है।

"आज बोलियों के अस्तित्व का संकट है। वैज्ञानिक और भौतिक उन्नति का बोलियों पर सकारात्मक प्रभाव कम, नकारात्मक प्रभाव अधिक है। गनीमत है कि अभी गाँव और शहर का बच्चा 'कुआँ' जानता है; पर आगे आने वाली पीढ़ियाँ न कुआँ जानेंगी, न कुएँ से जुड़ी हुई संस्कृति को। जिस कुएँ के पनघट को लेकर हिंदी कवियों ने खूब धमाचौकड़ी मचायी है, अब न वह कुआँ रहा, न पनघट..."

भारत सरकार में हिंदी बोलियों के संवर्द्धन के प्रति इच्छा-शक्ति के दर्शन कभी नहीं हुए। बोलियों को छोड़िए हिंदी का यथोचित विकास व प्रचार-प्रसार भी नहीं हो सका। सरकार की नीतियों ने हिंदी बोलियों के साथ सदैव खिलवाड़ ही किया है। भारतीय संविधान में हिंदी का उल्लेख प्रमुख रूप से दो अनुच्छेदों में किया गया है। अनुच्छेद 343 में देवनागरी लिपि लिखित हिंदी को राजभाषा स्वीकार किया गया है और अनुच्छेद 351 में उल्लिखित अष्टम अनुसूची में अन्य भाषाओं के साथ हिंदी का भी समावेश किया गया है। हिंदी बोलियों के सम्बंध में संविधान मौन है। आज हिंदी की बोली भोजपुरी को अष्टम अनुसूची में सम्मिलित करने की मुहिम चल रही है। अगर ऐसा हुआ तो यह हिंदी के लिए बहुत बड़े खतरे का संकेत होगा और पुरुषोत्तम दास टंडन की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होगी कि हिंदी बोलियाँ, हिंदी के लिए संकट उत्पन्न करेंगी। आज भोजपुरी हिंदी से पृथक भाषा हो जायेगी, कल ब्रजभाषा और अवधी आदि बोलियाँ भी| तब हिंदी में क्या बचेगा?

हिंदी के विकास और संवर्द्धन के लिए उत्तर और दक्षिण में अनेक संस्थानों की स्थापना हुई, जैसे नागरी प्रचारिणी सभा काशी, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास, गुजरात विद्यापीठ

अहमदाबाद, मुम्बई हिंदी विद्यापीठ मुम्बई, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा पुणे, हिंदी विद्यापीठ देवधर, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति गुवाहाटी, हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद, केरल हिंदी प्रचार सभा त्रिवेंद्रम, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति बैंगलोर, उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद पुरी, सौराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति राजकोट, मणिपुर हिंदी परिषद इंफाल, केंद्रीय हिंदी निदेशालय दिल्ली, केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ आदि आदि। इन संस्थानों ने हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार में महती भूमिका निभायी है; लेकिन हिंदी बोलियों के साथ सौतेला व्यवहार किया है। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ के उपाध्यक्ष जब डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन जी थे, तब उन्होंने जनपदीय अवधी कोश की योजना बनायी थी। इसको साकार रूप देने के लिए कई बैठकें हुईं और 'अवधी कोश' के प्रधान संपादक प्रोफेसर भगवती प्रसाद सिंह जी (गोरखपुर) को बनाया गया। मैं उस योजना में शोध सहायक था और बहराइच, गोंडा तथा फतेहपुर जनपदों से शब्द संकलित किए थे, लेकिन संस्थान की उदासीनता के कारण वह योजना परवान न चढ़ सकी। अन्य संस्थाओं ने भी बोलियों के सम्बंध में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया। इन संस्थानों की नकारात्मक भूमिका ने भी बोलियों के सिकुड़ने में सहयोग दिया।

आज बोलियों के अस्तित्व का संकट है। इसके अन्य अनेक कारण और भी हैं जैसे वैज्ञानिक और भौतिक उन्नति का बोलियों पर सकारात्मक प्रभाव कम, नकारात्मक प्रभाव अधिक है। गनीमत है कि अभी गाँव और शहर का बच्चा 'कुआँ' जानता है; पर आगे आने वाली पीढ़ियाँ न कुआँ जानेंगी, न कुएँ से जुड़ी हुई संस्कृति को। जिस कुएँ के पनघट को लेकर हिंदी कवियों ने खूब धमाचौकड़ी मचायी है, अब न वह कुआँ रहा, न पनघट। एक बात और है- आज का हिंदी विद्वान जो बोलियों तथा उनके शब्द-संसार से परिचित नहीं है और पद्मावती की व्याख्या करने बैठ जाता है, तब 'ओरी' का अर्थ 'मोरी' अर्थात् नाली करता है। उसे पता ही नहीं है कि बरसात के समय छप्पर से टपकने वाला या बहने वाला पानी 'ओरी' या 'ओलती' (उइलाती, ओरउनी) कहलाता है। अतः वह व्याख्या करता है कि नायिका के नेत्रों से अश्रु नाली की तरह बह रहे हैं। जायसी ने आँसुओं की जितनी सार्थक उपमा दी है, व्याख्याकार ने उतना ही अधिक भ्रष्ट कर दिया है।

हिंदी बोलियों के संदर्भ में हिंदी शब्दकोशों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता है; लेकिन हिंदी बोलियों के संदर्भ में उनकी भूमिका उतनी सकारात्मक नहीं, जितनी होनी चाहिए। हिंदी का पहला शब्द कोश अमीर खुसरो कृत 'खालिकबारी' है। बाद में कुछ पद्यबद्ध कोश कवियों (बनारसीदास जैन 1613, शिरोमणि मिश्र 1623, खुमान कवि 1780, नवल सिंह 1846 आदि) द्वारा लिखे गए हैं। अंगरेजों को हिंदी सिखाने की दृष्टि से यूरोपीय विद्वानों ने भी अनेक शब्द-कोश निर्मित किए, जैसे हिंदुस्तानी भाषा का कोश- जे. फर्गुसन 1773, हिंदुस्तानी-अंग्रेजी शब्द संग्रह- गिलक्रिस्ट 1798, हिंदी शब्दकोश- पादरी टी.एडम 1829, हिंदी

भाषा का शब्दकोश– पादरी जे.डी वेट 1870, हिंदुस्तानी शब्दकोश– एम.डब्ल्यू फालन, हिंदी और अंग्रेजी कोश– जे.टी टाम्पसन 1846, आदि आदि। तदनंतर हिंदी शब्दकोश लिखने की वास्तविक शुरुआत हुई– हिंदी कोश बुक्स एंड लिटरेचर सोसायटी 1871, शब्दकोश राधेलाल मुंशी 1873, मंगल कोश 1877, देव कोश 1883, भाषा कोश 1899 आदि अनेक कोश प्रकाश में आये। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने श्री श्यामसुंदर दास के प्रधान संपादकत्व में 1912 और 1929 के बीच हिंदी शब्द सागर का संपादन किया, जिसमें लगभग एक लाख शब्द हैं और हिंदी बोलियों के शब्दों को थोड़ा बहुत समेटने का प्रयास किया गया है। सन 1963–66 में हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व में पाँच खण्डों में 'मानक हिंदी कोश' का प्रकाशन किया है। अनेक कोश व्यक्तिगत प्रयासों से भी संपादित हुए– 'प्रामाणिक हिंदी कोश', 'नालंदा शब्द सागर', 'वृहद हिंदी कोश' आदि। प्रसिद्ध कोशकार डा॰ हरदेव बाहरी के अनुसार– 'अभी तक प्रकाशित कोशों में 'हिंदी शब्द सागर' ही ऐसा शब्द कोश है, जिसमें साहित्य और लोक तक पहुँच कर कोश संपादन का प्रयत्न किया गया है। अन्य कोशों में भी ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियों के शब्द संग्रहीत हैं; किंतु उनमें ऐसा संकेत नहीं किया गया है कि अमुक शब्द किस बोली का है। सुखद बात यह है कि हिंदी बोलियों के पृथक–पृथक शब्दकोश संपादित हुए हैं, जैसे– 'भोजपुरी शब्द सम्पदा'– डॉ॰ हरदेव बाहरी, 'अवध शब्दकोश'– रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', 'कन्नौजी शब्द कोश'– डॉ॰ राजकुमार सिंह, डॉ॰ जगदीश व्योम, जवाहर सिंह गंगवार आदि आदि। इन कोशों में बोलियों के शब्दों को संरक्षित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। सिकुड़ती हुई हिंदी बोलियों के लिए ये कोश संजीवनी हैं।

हिंदी बोलियों का संसार निश्चित रूप से सिकुड़ता जा रहा है। अत: आवश्यकता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी बोली को बोलने में संकोच न करे। हीन भावना की अनुभूति मिथ्या है। प्रत्येक हिंदी साहित्यकार अपनी बोली में रचना करने को प्राथमिकता दे। हिंदी भाषी प्रांतों की सरकारें, कम से कम प्राथमिक शिक्षा बोलियों में दी जाने की व्यवस्था सुनिश्चित कर कुकुरमुत्तों की तरह उगते हुए पब्लिक स्कूलों पर प्रतिबंध लगाये। हिंदी बोली भाषी प्रत्येक व्यक्ति को गिरमिटिया मजदूरों की तरह अपनी बोली को बोलने में गर्व का अनुभव करना चाहिए, जो विदेशों में जाकर अपनी भाषा–बोली और संस्कृति को सुरक्षित एवं संरक्षित किए हुए हैं। परिणामत: सिकुड़ती हुई बोलियाँ अपना यथोचित विस्तार पायेंगी।

-डॉ॰ राजकुमार सिंह

अभिनव शुक्ल

मेरठ (उत्तर प्रदेश) में जन्में और वर्तमान में सैन एंटोनियो, अमेरिका में निवास कर रहे अभिनव शुक्ल कवि एवं व्यंग्यकार हैं। पेशे से इंजीनियर अभिनव शुक्ल अमेरिका में होने वाले कवि सम्मेलनों के लोकप्रिय कवि हैं, देश-विदेश से निकलने वाली हिन्दी की कई साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक/संरक्षक भी हैं। अनेक संस्थाओं से उन्हें पुरस्कृत/सम्मानित किया जा चुका है।

ईमेल - shukla_abhinav@yahoo.com

कविता

-अभिनव शुक्ल

1. लोग

मिलते ही गले लग जाते थे
हाथ पकड़े-पकड़े करते थे बात
कंधे में हाथ डाले घुमा लाते थे बाज़ार
बाँह को तकिया बनाकर सो जाते थे
उड़ेल कर रख देते थे
अपनी बातों में अपने दिल को
भूत-प्रेत के सच्चे किस्से सुनाते
टूटे-फूटे स्वरों में
मन का गीत गुनगुनाते
हँसते-मुस्कुराते
वे कैसे लोग थे
जो ये सब कर लेते थे
मैं तो-
ठीक से 'हैलो' कहना भी
नहीं सीख पाया हूँ
आज तक...

2. साहस

मंज़िल पाना है ध्येय अगर
तो चलने का साहस रक्खो
तारा बनने की इच्छा है
तो जलने का साहस रक्खो

सचमुच में काफी मुश्किल है
ऊँचे पर्वत पर चढ़ पाना
गति है जीवन की तेज़ बहुत
इस दौड़ में आगे बढ़ पाना
फिर भी जग में बढ़ने वाले
झट पर्वत पर जा चढ़ते हैं
टकरा-टकरा तूफानों से
आगे ही आगे बढ़ते हैं
अब काहे की है बेहोशी
कैसी अलसाई अँगड़ाई
यदि दरिया बन कर बहना है
तो गलने का साहस रक्खो
मंज़िल पाना है ...

वह कौन जिसे ना प्यारी हो
यह नींद मधुर सपनों वाली
किसके मन को ना भाती है
आराम की धुन अपनों वाली
जब युद्ध छिड़ा हो घमासान
जो जीवन को हर सकता है
तब कोई सिपाही सीमा पर
आराम नहीं कर सकता है
फिर कैसी नींद भला कैसी
बिखरी उलझी सी जम्हाई
यदि कुंदन बनकर तपना है
तो ढलने का सहस रक्खो
तारा बनने की इच्छा है
तो जलने का साहस रक्खो...

3.
पुण्य प्रतिष्ठित ज्ञान

गए सुयोधन मदद माँगने नट नागर के पास
सोते थे प्रभु सजा लिया आसन मस्तक के पास

तभी वहाँ अर्जुन आये मन में कुछ भाव समेटे
किया नमन फिर देखा शैया पर भगवान हैं लेटे

चरणों में बैठे सकुचाकर, कहीं न प्रभु जग जाएँ
दुर्योधन ये सोच रहा था जागें तो कुछ पाएं

उठे कृष्ण, देखा अर्जुन को बैठा अपने पास
दुर्योधन के भी होने का हुआ उन्हें आभास

हो अधीर तब यह बोला हस्तिनापुरी युवराज
मेरा है अधिकार आप पर सबसे पहला आज

प्रभु बोले अधिकार इसी एक शब्द का तुम्हें पता
है
किन्तु तुम्हारा शब्द मुझे यूँ बाँध नहीं सकता है

युद्ध द्वार पर खड़ा ताकता है कुछ अभावों को
समझ गया मैं आज तुम्हारे मन के सब भावों को

एक ओर हैं अस्त्र-शस्त्र सज्जित मेरी सेनाएँ
हाथी घोड़े रथी सारथी भाले प्रत्यंचाएँ

धन बल वैभव मेरी द्वारका के उर में जितना है
सेनाओं के संग रखा एक पलड़े में उतना है

अपनी इस काया से दूजा पलड़ा आज भरूँगा
शस्त्र नहीं उठाऊँगा हमला भी नहीं करूँगा

माँगो अर्जुन पहले तुम पहले तुमको देखा है
मौन विकल्पों में खींचती कैसे जीवन रेखा है

अर्जुन नें तत्क्षण प्रभु के चरणों में शीश नवाया
अपने मन का निश्चय हो आनंदित उन्हें सुनाया

बोला सेनाएँ कब हर पातीं जग का संताप
मुझे निकट रहने दें अपने दूर न करें हरि आप

जब-जब जीवन में अँधियारा कष्टमयी होता है
तब-तब मानव से मानव का प्रेम विजयी होता है

रोम-रोम पुलकित होकर जब करता है सम्मान
तभी जगत को मिलता प्रभु से पुण्य प्रतिष्ठित ज्ञान

मधुर वचन अर्जुन के सुनकर दुर्योधन मुस्काया
उसकी शकुनी मति को इनका भाव बहुत ही भाया

किया प्रफुल्लित होकर उसनें भीषण अट्टहास
मानो करता हो वह अर्जुन की मति का उपहास

भूल गया अभिमान किसी से तार नहीं सकता है
संग यदि प्रभु हों तो कोई हार नहीं सकता है

भीषण युद्ध हुआ जिसका निर्णय है सबको ज्ञात
गीता वाचक की लीलाएँ जग में हैं विख्यात

--अभिनव शुक्ल

प्रगति टिपणीस

लखनऊ, उत्तर प्रदेश में जन्म। पिछले तीन दशकों से मास्को, रूस में निवास। रूसी भाषा से हिंदी और अंग्रेज़ी में अनुवाद कार्य। पाँच सदस्यीय दल के साथ हिंदी-रूसी मुहावरा कोश और हिंदी मुहावरा कोश पर कार्यरत। मॉस्को की भारतीय संस्था 'हिंदुस्तानी समाज, रूस' की सांस्कृतिक सचिव हैं। अनन्य 'रूस' पत्रिका की संपादक।

ईमेल - pragatitipnis@gmail.com

गोरिकी (गोर्की) का घर

-प्रगति टिपणीस

'नीझ्नी नोवगरद धर्मान्धिता, साम्राज्यवाद की चमक, रूसी शहरों की सच्ची तस्वीर, अपने अनोखे मिज़ाज तथा कठिनाइयों, ग़रीबी, बदहाली से जूझते आमजन का प्रतिनिधित्व करता था। नीझ्नी की इन्हीं सच्चाइयों का सामना करते हुए अलेक्सेई पिश्कोव में मक्सीम गोरिकी होने का अंकुर फूटा था।..."

साम्राज्यवादी रूस में एक बच्चा बढ़ई पिता मक्सीम पिश्कोव और समाज में साधारण-सी स्त्री का दर्जा रखने वाली माँ वरवारा वसीलियेव्ना के यहाँ जन्मता है, उसे नाम अलेक्सेई दिया जाता है। रूसी परम्परा के अनुसार उसका पूरा नाम अलेक्सेई मकसीमविच पिश्कोव बनता है (मकसीमविच यानी मक्सीम का बेटा)। वह बचपन से ही दमन, उच्च-निम्न वर्गों के बीच की असमानताएँ, ग़रीबी और समाज की अन्य कुरूपताएँ देखता है। वह अभी तीन वर्ष का ही है कि उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। उसके बाद वह माँ और नानी के साथ अस्त्राख़ान से अपने नाना के घर नीझ्नी नोवगरद रहने आ जाता है। ये दोनों ही शहर वोल्गा नदी पर बसे हुए हैं और उन दिनों इन शहरों के बीच आवाजाही का ज़रिया मुख्यतः वोल्गा नदी ही होती थी। नए घर में नानी का भरपूर प्यार तो मिलता है पर नाना का बर्ताव सख़्त रहता है और मामाओं (मिख़ाइल और याकव) का उदासीन। ऐसे वातावरण में छोटा बच्चा हमेशा सहमा-सा रहता, पर माँ और नानी का साथ उसे हौसला देता रहता। उतार-चढ़ाव का दौर अभी बस शुरू ही हुआ था। माँ दूसरी शादी कर लेती है और सौतेले पिता के साथ निभ न पाने के कारण

नाना के घर में बालक गोरिकी की प्रतिमा

अलेक्सेई को वापस अपने नाना के घर लौटना पड़ता है। उसे ग्यारह बरस की उम्र का होते-होते माँ भी तपेदिक के कारण मृत्यु को प्राप्त होती है। उसके बाद नानी के आँचल तले नाना के कड़े व्यवहार को वह बच्चा एक साल और झेलता है और फिर दुनिया के गोरखधंधे में अपनी जगह तलाशने के लिए निकल पड़ता है। हृदय उसका संवेदनशील था और हर अनुभव की छाप गहरी पड़ती थी। घर छोड़कर जो कि नीझ्नी नोवगरद में था वह पैदल ही कोहे-क़ाफ़ (काकेशिया पर्वत) की यात्रा करता है। पाँच साल लम्बे इस सफ़र में कई पड़ाव आते हैं, वह तरह-तरह के लोगों से मिलता है और कई जगहों पर काम करता है। इस दौरान की घटनाएँ और अनुभव उसके मानस पर दर्ज होते जाते हैं जिन्हें वह बाद में अपनी कई साहित्यिक रचनाओं का आधार बनाता है। यह कहानी किसी और की नहीं बल्कि मक्सीम गोरिकी की है, जो पाँच बार नोबल पुरस्कार के लिए नामित किए गए थे और जिनकी किताबों की प्रतियाँ बीसवीं सदी की शुरूआत में भी हज़ारों की संख्या में बिका करती थीं।

रूस के शहरों में एक बात जो आम होती है, वह है सिर उठाते ही गिरजाघर के सुनहरे चमकते गुम्बदों का दिखना। उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी की शुरूआत में गगनचुम्बी इमारतों के न होने के कारण धर्म के इन केंद्रों के सिर और अधिक बुलंद लगा करते होंगे! नीझ्नी नोवगरद धर्मान्धता, साम्राज्यवाद की चमक, रूसी शहरों की सच्ची तस्वीर, अपने अनोखे मिज़ाज तथा कठिनाइयों, ग़रीबी, बदहाली से जूझते आमजन का प्रतिनिधित्व करता था। नीझ्नी की इन्हीं सच्चाइयों का सामना करते हुए अलेक्सेई पिश्कोव में मक्सीम गोरिकी होने का अंकुर फूटा था। ऐसी परिस्थितियों में रहते, निजी और सामाजिक जीवन के अनुभवों से ज़िन्दगी को समझते-समझते लेखक का हृदय दूसरों के प्रति गहरी संवेदना की अनुभूति करने लगा और इन्हीं अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए लेखक ने अपने जन्म के समय की चीख के बारे में कहा है, "मुझे पूरा यक़ीन है कि वह घृणा और विरोध की चीख रही होगी।" कितना सटीक कहा था लेखक ने, २८ मार्च १८६८ की अंधेरी रात में निकली उस चीख के सन्दर्भ मे। क्या आज घृणा और विरोध की चीख की ध्वनि धीमी पड़ गयी है या अब भी वह समस्त विश्व में गूँज रही है?

गोरिकी की मेज़

नाना के घर का रसोई घर और उसकी भट्टी। इसी की छत पर अलेक्सेई सोया करता था।

उस चीख की कड़वाहट तब भी थी और आज भी है, तभी तो लेखक अलेक्सेई मकसीमविच पिश्कोव से मक्सीम गोरिकी बना। गोरिकी का अर्थ कड़वाहट होता है। मक्सीम नाम तख़ल्लुस में चुनने का कारण शायद पिता या छोटे भाई का नाम रहा होगा। पिता का साया अलेक्सेई के सिर से तीन साल की उम्र में ही उठ गया था। पिता की मृत्यु के तुरंत बाद भाई मक्सीम का जन्म हुआ था लेकिन उसकी ज़िन्दगी भी चंद रोज़ की ही थी। इन दोनों की मृत्यु के बाद अलेक्सेई, जो तब मात्र तीन साल का था, की ज़िन्दगी में अविश्वसनीय बदलाव आए।

मक्सीम को पढ़ना माँ ने सिखाया था और चर्च की शिक्षा नाना की सरपरस्ती में मिली थी। लेकिन गोरिकी धर्म को मात्र अंध-विश्वास का प्रचारक और ढकोसला मानते थे। वे कहते थे, “भगवान कल्पना का नतीजा है, एक ख़राब कल्पना का। वह लोगों के ऊपर व्यक्ति-विशेष की सत्ता मज़बूत करने के लिए बनाया गया है। इसीलिए वह केवल “मालिक-इनसान” की ज़रूरत है, मज़दूरों का तो वह दुश्मन है।”

साल २०२२ में हम कुछ दोस्त नीझ्नी नोवगरद घूमने और वहाँ से कज़ान तक वोल्गा नदी पर क्रूज़ के लिए गए थे। हमारा ग्रुप छोटा नहीं था और उसमें लोगों की दिलचस्पियाँ भी अलग-अलग थीं। यहाँ यह बता दूँ कि नीझ्नी का आधिकारिक नाम सन् १९३२ से १९९० तक लेखक के सम्मान में गोरिकी किया गया था। नीझ्नी ही वह शहर है जहाँ पर महान लेखक का अत्यंत दुःखद बचपन बीता और जहाँ उन्होंने

विश्व-विख्यात लेखक का दर्जा पा लेने के बाद के अपने जीवन के सबसे सुखद पल बिताए। बचपन की कड़वी आपबीती लेखक ने अपनी पहली आत्मकथात्मक पुस्तक 'द्येत्स्त्व' यानि 'मेरा बचपन' में विस्तार से लिखी है। जिंदगी की राह पर अकेले चलने के शुरुआती दौर के अनुभव दूसरी आत्मकथात्मक किताब 'व्ल्युदयाख़' यानि 'जीवन की राहों पर' ('जनता के बीच') में कलमबद्ध किये हैं। रोज़ी-रोटी की तलाश में और अपनी जगह समाज में बनाने की जद्दोजहद में दर-बदर फिरने वाले एक नौजवान ने जो तालीम ज़िन्दगी से हासिल की, उसका ब्यौरा लेखक ने अपनी आत्मकथा के तीसरे भाग 'मई उनिवेरसित्येति' यानि 'मेरे विश्वविद्यालय' में दिया है।

बहरहाल हम में से जिनके लिए शहर का मुख्य आकर्षण गोरिकी और उनसे जुड़े स्थान थे, उन्होंने जब होटल के रिसेप्शन पर पूछताछ की तो पता चला कि वहाँ से कुछ ही दूरी पर साहित्यिक और ऐतिहासिक महत्त्व के गोरिकी के तीनों स्थान हैं। इस जानकारी से हमारी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। अगली सुबह सभी लेखक-प्रेमी निकल बढ़े शहर के गोरिकी से सम्बंधित पहले स्थान की तरफ़।

"अपनी क्रान्तिकारी-समर्थक विचारधारा और खुलकर मज़दूरों और निम्न वर्गों की पैरवी तथा बुर्जुआ वर्ग की मुख़ालिफत करने की वजह से समय-समय पर क़ैद करके उन्हें देश-निकाले की सज़ा होती रहती थी तथा अन्य प्रतिष्ठित संस्थाओं से मिलने वाले सम्मानों को ज़ार रद्द भी घोषित कर दिया करता था।...."

आसमान बादलों से ढका हुआ था, मौसम ब्यूरो ने बारिश के अंदेशे से सचेत भी किया था। उमड़ते बादलों और हवा के थपेड़ों के साथ हम बढ़ते जा रहे थे अपने गंतव्य गोरिकी साहित्य संग्रहालय की ओर। जी हाँ, हमने इसी स्थान से महान लेखक के साथ अपने सामीप्य को बढ़ाना निर्धारित किया था।

यह संग्रहालय गोरिकी के ज़माने के नीझ्नी नोवगरद की सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों का ब्योरा अपने में सँजोए है। यह इमारत लेखक पावेल मेलिंकव (तख़ल्लुस अन्द्रेई पिचेरस्की), रूसी घरेलू परम्पराओं और ऑर्थोडॉक्स चर्च में पड़ी फूट के जानकार; जनलेखक व्लादीमिर करालेन्का, जो चेख़फ़ और तलस्तोय के समकालीन थे तथा गोरिकी के पहले शिक्षक; कवियों इवान रुकावीष्निकव और लिऑनिद ग्रावे के अलावा शहर के मशहूर फोटोग्राफ़रों, कलाकारों तथा संगीतकारों की ज़िन्दगियों का दस्तावेज़ है। इसमें उन सभी हस्तियों के बारे में जानकारी मिलती है, जिनकी उस युग में शहर के लिए उल्लेखनीय भूमिका रही थी। इस संग्रहालय का सबसे बड़ा आकर्षण गोरिकी के जीवन और उनके काम की

मक्सीम गोरिकी का कार्यालय

जानकारी देतीं वस्तुएँ हैं। यहाँ मनुष्य के प्रति श्रद्धा की सीमा तक आस्था रखने वाले नौजवान गोरिकी की कृतियों से रु-ब-रु हुआ जा सकता है; उनकी ये कृतियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि लेखक के विषयों में ताज़गी थी और शहर में प्रचुर मात्रा में हो रही साहित्यिक गतिविधियों में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

संग्रहालय के दस्तावेज़ और वस्तुएँ लेखक की सृजन-यात्रा के पड़ावों से परिचय कराते हैं, उनकी ज़िन्दगी और रूसी इतिहास के निर्णायक पलों में उनकी गतिविधियों को बयान करते हैं तथा स्तालिन शासन के समय यानि पिछली सदी के तीस के दशक के दौरान राष्ट्र और लेखक के साथ घटी त्रासदियों को हमारे सामने लाते हैं।

संग्रहालय के बाद हमने मक्सीम गोरिकी के उस अपार्टमेंट की तरफ़ कूच किया जहाँ वे सितम्बर १९०२ में पत्नी येकातिरीना पावलवना और पाँच साल के बेटे मक्सीम तथा एक साल की बेटी कात्या के साथ रहने आते हैं। अब तक नाम के साथ-साथ गोरिकी को अपनी कृतियों के लिए ख़ासी रॉयल्टी मिल चुकी थी और उनका शुमार संपन्न लोगों में होने लगा था। उनके इस फ्लैट में ११ कमरे हैं। दरवाज़े पर लगी नाम पट्टी

अलेक्सेई पिश्कोव की ही है। यहाँ दाख़िल होने पर सबसे पहले लेखक के ओवरकोट, बूट्स, छतरी वग़ैरह दिखाई देते हैं। रूस में चूँकि ५ महीने बर्फ़ गिरती है, इसलिए घर में घुसते ही सबसे पहले लोग ऊपरी कपड़े और जूते निकालते हैं। इस अपार्टमेंट में गोरिकी की वह मेज़ भी है जिस पर बैठकर उन्होंने अपने बहुचर्चित नाटक 'ना द्रे' यानि 'तलछट' और 'मिश्चाने' यानि 'निम्न मध्यवर्गीय समाज' लिखे, जिनको रूसी नाट्य-लेखक संघ द्वारा बहुत पसंद किया गया और उसने लेखक को ग्रीबायेदव सम्मान से दो बार नवाज़ा। गोरिकी स्वयं इस घर में लगभग दो साल रहे थे। उस दौरान वे सफलता और ख्याति के सोपान तो बड़ी तेज़ी से चढ़े लेकिन ज़ार के अधिकारियों की उन पर हमेशा पैनी नज़र बनी रहती थी। अपनी क्रन्तिकारी-समर्थक विचारधारा और खुलकर मज़दूरों और निम्न वर्गों की पैरवी तथा बुर्जुआ वर्ग की मुख़ालिफत करने की वजह से समय-समय पर क़ैद करके उन्हें देश-निकाले की सज़ा होती रहती थी तथा अन्य प्रतिष्ठित संस्थाओं से मिलने वाले सम्मानों को ज़ार रद्द भी घोषित कर दिया करता था। उनकी उस मशहूर मेज़ में एक गोपनीय दराज भी थी जिसमें वे सरकार विरोधी पर्चे आदि रखते थे। इस फ्लैट को लेखक के समकक्ष 'गोरिकी अकादमी' कहकर पुकारते थे। इस घर में हमेशा साहित्यिक और सांस्कृतिक हस्तियों का हुजूम लगा रहता था और कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चाएँ होती थीं। फ्लैट का ड्राइंग रूम बहुत बड़ा है जिसमें एक बड़ी-सी मेज़ है जिस पर २५-३० लोग बैठकर बातचीत और भोजन कर सकते हैं।

भोजन कक्ष

कमरे में खिड़कियाँ कई हैं, बड़ी खिड़की के पास एक बड़ा पियानो रखा हुआ है। इस पियानो को बजाकर मशहूर संगीतकार फ़्योदर शलियापिन गीत गाते थे तथा शहरनिवासी खिड़की के नीचे खड़े होकर उन्हें बहुत मज़े से सुनते थे। बतौर मेहमान जिन लोगों का आना-जाना लगा रहता था, उनमें लेव तलस्तोय, लिओनिद अन्द्रियेव, इवान बूनीन, अन्तोन चेख़फ़, यिव्गेनी चिरीकफ़, इलिया रेपिन, कांस्तांतिन स्तानिस्लाव्स्की और फ़्योदर शलियापिन मुख्य हैं। ये उस समय के न केवल रूसी बल्कि विश्व साहित्य, कला और संस्कृति के नामी-गिरामी नाम थे।

इस फ़्लैट से कुछ दुःखद घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। बेटी कात्या की यहाँ पर मृत्यु हुई थी। गोरिकी का प्रसिद्धि के साथ-साथ संपर्क-

शलियापिन और उसकी बेटी के रहने का कमरा

क्षेत्र भी विस्तीर्ण होता गया। उनकी मॉस्को थिएटर की अदाकारा मरीया अन्द्रियेवा से पहले प्रगाढ़ दोस्ती हुई और फिर प्रेम। वे पत्नी और बच्चों को छोड़कर मॉस्को चले गए। पत्नी येकातिरीना पावलवना के साथ उनके सम्बन्ध आजीवन दोस्ताना बने रहे।

इस घर में परिवार के सदस्यों के कमरों के अलावा, गोरिकी का अध्ययन कक्ष, पत्नी की माँ का कमरा और मेहमानों के लिए अलग कमरे थे। शलियापिन और उनकी बेटी का सामान भी उनके कक्षों में देखा जा सकता है। गोरिकी का यह घर हर तरह से लेखन के क्षेत्र में मिली उनकी सफलता और समाज में उनकी प्रतिष्ठा की कहानी बयान करता है। इस घर की वस्तुएँ रूस में चल रही क्रांतिकारी गतिविधियों और समाज के एक उथल-उथल के दौर से गुजरने की गवाही भी देती हैं। घर की पहली मंज़िल पर 'तलछट' नाटक, जिसमें समाज के निम्नतम वर्ग के लोगों की ज़िन्दगियों का ब्यौरा सजीव ढंग से प्रस्तुत है, से जुड़ी उपलब्धियाँ प्रदर्शित हैं। वे सभी इशारा करती हैं कि देश और देश की जनता क्रांति चाहती थी।

अगले दिन सुबह हम गोरिकी प्रेमी पहुँचे उनके उस घर में जहाँ लेखक के बचपन के

कुछ साल बीते थे और ज़िन्दगी के कुछ अहम सबक़ उसने सीखे थे। यह घर उनके नाना का घर था, नाना का उपनाम कशीरिन था इसलिए यह कशीरीन आवास कहलाता था। गोरिकी की मृत्यु १८ जून सन् १९३६ को होती है और सन् १९३७ से यह घर बतौर म्यूज़ियम काम कर रहा है।

अब इस घर के प्रांगण में कई और छोटे कमरे बन गए हैं, जहाँ टिकट, सूवीनिएर आदि मिलते हैं। लोगों के बैठने के लिए बेंचें तथा छोटा-सा उपवन भी है। जिस घर में नाना और उनका परिवार रहते थे उसे म्यूज़ियम में परिवर्तित करने के लिए गोरिकी की किताब 'मेरा बचपन' का सहारा लिया गया है। इस घर के कमरे छोटे, छतें नीची, खिड़कियाँ और दरवाज़े बहुत छोटे हैं। इस घर का सबसे अहम और बड़ा कमरा रसोईघर है। उसमें ही खाने की मेज़ भी रखी है, जिस पर परिवार वाले भी साथ बैठते थे और मेहमान भी उसी के चारों तरफ। इस मेज़ पर हथकरघे पर बने कपडे का मेज़पोश है और लकड़ी के डोंगे और चम्मच बिलकुल वैसे ही रखे हैं जैसे बीसवीं सदी की शुरुआत में वहाँ थे। साथ ही नमकदानी है और लोहे का बना शमादान रखा है। हर घर में उन दिनों देवप्रतिमा वेदी होती थी, सो इस घर में भी है। नन्हा अलेक्सेई रसोईघर में बनी भट्टी की छत पर सोया करता था। सर्दी के दिनों में घरों को गर्म रखने और खाना पकाने आदि के लिए घरों में बड़ी भट्टियाँ बनी होती थीं। ये भट्टियाँ आकार में लगभग दो मीटर ऊँची, डेढ़ मीटर लम्बी और एक मीटर चौड़ी होती थीं। उन पर गद्दे आदि डालकर बच्चे तो क्या अक्सर बड़े भी सो जाया करते थे। कमरे के बाएँ कोने में बर्तन आदि रखने की जगह है और पास ही वह बेंच है जिस पर अपने नाती, पोतों को लिटाकर नाना वसीली कशीरीन सबक़ सिखाने के लिए बेत से मारा करते थे।

रसोईघर के बाद अगला कमरा नाना का है। कमरे छोटे हैं और उनमें केवल अतिआवश्यक चीज़ों की जगह है। इस कमरे में एक छोटा तख़्त, सामान के लिए संदूक, लिखने-पढ़ने के लिए मेज़, दीवारों पर देव प्रतिमाएँ और कुछ तस्वीरें हैं। कपड़े टाँगने के लिए एक खूँटी भी है।

नानी का कमरा और भी छोटा है और उसमें भी सिर्फ़ ज़रुरत की चीज़ें ही हैं। उनके कमरे में एक दीवार घड़ी भी है। मामा मिखाइल के कमरे की चीज़ें भी साधारण से विलासता की ओर बिलकुल क़दम नहीं बढ़ातीं। हालाँकि मेज़ पर समावार और टीसेट तथा वाइन की सुराही और प्याले हैं। उन दिनों पीढ़ी-अंतर दिखाने वाली यही चीज़ें होती थीं।

लेखक की माँ कुछ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़ कर जाने के बाद एक बहुत ही छोटे कमरे में रहती थीं।

गोरिकी के नाना और मामा रंगरेज़ थे और शहर के सबसे क़ाबिल कारीगर माने जाते थे। घर के मुख्य भाग से बाहर आने पर आँगन में रंगघर, बघ्घी रखने की जगह, बॉयलर और भुसौला आदि थे।

इस घर में एक और अहम शख़्स रहा करता था, वानिया त्सिगानोक। कहने को तो वह

बतौर नौकर रंगरेज़ी के कामों के लिए रखा गया था, पर बच्चों के साथ उसकी अच्छी बनती थी और वह उन्हें हमेशा ख़ुश रखने की कोशिश करता था, इसके लिए वह मसख़री भी करता था। उसका काम बहुत अच्छा था और व्यवहार भी। मामा याकव की पत्नी की शवयात्रा में बड़ा-सा लकड़ी का क्रॉस ले जाते समय दुर्घटना में वानिया की मृत्यु हो जाती है। आज भी घर की चहारदीवारी के सहारे एक लकड़ी का बड़ा क्रॉस रखा है, जो वफ़ादार वानिया को विनम्र श्रद्धांजलि है।

वोल्गा नदी को निहारती या चर्च को धिक्कारती गोरिकी की प्रतिमा

ये हुई संग्रहालयों की बातें। शहर में लेखक की कई भव्य प्रतिमाएँ भी हैं। नीझ्नी पहुँचते ही हम वोल्गा नदी के दर्शन करने जिस नदी-तट पर गए, वहाँ पर लेखक की एक भव्य प्रतिमा विचारमग्न मुद्रा में बैठी मानो नदी को देख रही हो, या कह सकते हैं कि शहर के सबसे पुराने गिरजाघर को ताक रही हो और कह रही हो कि भगवान तुम्हारे काम हमेशा से समाज को बाँटने के ही क्यों रहे! गोरिकी की आखिरी बातचीत अपनी नर्स से हुई थी। उन्होंने उससे कहा था, "जानती हो, मैं अभी भगवान से बहस कर रहा था, मैंने बहस में उसे क्या-कुछ न कहा!"

अपने पूरे माहात्म्य के साथ बहती वोल्गा ने नीझ्नी के बहुत उतार-चढाव देखे हैं। उस ज़मीन पर कई महान हस्तियाँ पनपी और बड़ी हुई हैं, जिन्होंने अपने क्षेत्रों में अभूतपूर्व आयाम

प्राप्त किये हैं। लेकिन इस शहर को मान, सम्मान और प्रतिष्ठा दिलाने तथा इसके बाशिंदों को उनके अधिकार दिलाने का जो काम गोरिकी ने किया है, वह हर मायने में बेजोड़ है।

गोरिकी समाज के निम्नतम वर्गों के लोगों की स्थिति का जीवंत वर्णन करने और अपनी कृतियों से दबे-कुचले वर्गों को हौसला देने के लिए जाने जाते हैं। उन्हें साहित्यिक धारा 'समाजवादी यथार्थवाद' का प्रणेता माना जाता है। साहित्य पटल पर उनका उदय उस समय हुआ जब रूस की जनता ने साम्राज्यवाद की मुख़ालिफ़त शुरू कर दी थी, क्रान्ति के बिगुल के दबे-दबे स्वर सुनाई देने लगे थे। उन्होंने इन्हीं स्वरों को अक्षरों में ढाला और हर दमनकारी नीति के विरोध में कलम चलाई। उनके द्वारा लिखा उपन्यास 'माँ' १९०६ में पहले अँग्रेज़ी में प्रकाशित हुआ था और फिर सन् १९०७ में रूसी में। इस पुस्तक का दुनिया की लगभग हर मुख्य भाषा में अनुवाद हुआ है और इस पर दर्जनों फिल्में बनाई गईं हैं तथा कई नाटक प्रस्तुत किए गए हैं। इस उपन्यास का उद्देश्य हताश और निराश समाज में नयी जान फूँकने और उसे पुनः आत्म-विश्वास से भरना था। हालाँकि गोरिकी स्वयं उपन्यास माँ के बड़े आलोचक थे, लेकिन उपन्यास ने अपना उद्देश्य न केवल रूस में बल्कि दुनिया के कई मुल्कों के मज़दूर वर्ग को उम्मीद की किरण दिखा कर पूरा किया था। उन्होंने अपनी रचनाओं से समाज के निचले तबक़ों को कभी दूर नहीं किया, समाज के हर दर्द को जितना संभव हुआ सामने लाये और उन तलछटों को भी रौशन किया जहाँ सदियों से अँधेरा फैला हुआ था। ग़रीबी और उदासी की गर्त में पैदा हुए गोरिकी आजीवन ऐसी रचनाएँ लिखते रहे जो समाज और उसके बाशिंदों के लिए हमेशा से आशा का आकाशदीप बनी हुई हैं।

(टिप्पणी - इस आलेख में रूसी नामों के उच्चारण यथासंभव रूसी के अधिकाधिक समीप देने की कोशिश की गयी है। चूँकि आरम्भ में रूसी साहित्य अँग्रेज़ी से अनूदित होकर हम तक पहुँचा, इसलिए रूसी भाषा के नाम अँग्रेज़ी की सीमाओं के कारण अपने असल उच्चारण से दूर होते गए। हिन्दी में रूसी भाषा में पाए जाने वाले अधिकांश स्वर मिलते हैं इसलिए हम नामों को मूल के काफ़ी क़रीब रख सकते हैं। पाठको, आपको गोर्की की जगह गोरिकी शब्द खटक रहा होगा, परन्तु वही लेखक द्वारा लिए तख़ल्लुस का सही उच्चारण प्रस्तुत करता है।)

-प्रगति टिपणीस, मास्को, रूस

बच्चा लाल 'उन्मेष'

गाँव ममहर जिला भदोही (उत्तर प्रदेश) में जन्में और वर्तमान में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत बच्चा लाल 'उन्मेष' चर्चित युवा कवि हैं। 'कौन जात हो भाई' और 'छिछले प्रश्न गहरे उत्तर' नाम से दो कविता संग्रह प्रकाशित हैं। मलखान सिंह सिसौदिया कविता पुरस्कार से पुरस्कृत।

ईमेल - imunmeshbhu@gmail.com

दो कविताएँ

-बच्चा लाल 'उन्मेष'

01. गुलाब की आजादी

उसे शुरू से ही किताबों के बीच जाना पसंद था
मंदिरों की चौखट पर
सिर पटक कर पवित्र होना नहीं
गुलाब अब भी मित्र बनना पसंद करता है
किसी राजा के खातिर इत्र होना नहीं

नक चढ़ा राजा दीवार उठाते उठाते मर गया
उसे मालूम होना चाहिए था
कि इस जमाने की हवाएं
उस गुलाब के साथ हैं

हवाएं हर दौर में थोड़ी बगावती रही हैं
तानाशाहों की सेज पलटती रही हैं
बोतलों में कैद इत्र की आजादी के लिए
निरंतर काम करती रही हैं

राजा की हड्डियाँ
अब जैविक खाद में तब्दील हो चुकी हैं
उसी के ऊपर उग आये हैं
ढेर सारे गुलाब
असल में राजा अब जाकर मरा

इस बोझ से दबकर मरा
इस कलमी पौधे में उगे
गुलाब की कोमल पंखुड़ियों को छूकर मरा....

-बच्चा लाल 'उन्मेष'

कविता

02. विषय में नदियाँ

नदियाँ गिरती हैं
तो भूगोल का विषय बनती हैं

नदियाँ मिलती हैं
तो समाजशास्त्र का विषय बनती हैं

नदियाँ जुड़ती हैं
तो तर्कशास्त्र का विषय बनती हैं

नदियाँ बहती हैं
तो दर्शनशास्त्र का विषय बनती हैं

नदियाँ घटती हैं
तो गणित का विषय बनती हैं

नदियाँ धारा बदलती हैं
तो इतिहास का विषय बनती हैं

नदियाँ लहराती हैं
तो हिंदी का विषय बनती हैं

नदियाँ फूटती हैं
तो स्त्री विमर्श का विषय बनती हैं

पर नदियाँ मरती हैं
तो 'शर्म' का विषय बनती हैं।

-बच्चा लाल 'उन्मेष'

सूर्यबाला

वाराणसी मे जन्मीं और काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी से हिंदी साहित्य में पीएच. डी. प्राप्त डॉ. सूर्यबाला जी सुप्रसिद्ध कथाकार हैं। कहानी, उपन्यास, हास्य व्यंग्य, बाल साहित्य, संस्मरण, डायरी, और अनूदित पुस्तकों सहित 30 पुस्तकें प्रकाशित हैं। कई रचनाएँ विभिन्न पाठ्यक्रमों मे शामिल। हरिशंकर परसाई स्मृति सम्मान सहित अनेक विशिष्ट पुरस्कारों से सम्मानित/पुरस्कृत।

ईमेल - suryabala.lal@gmail.com

माय नेम इश ताता

-सूर्यबाला

"दर्द से बिलबिलाई ताता जोर से रो पड़ी, लेकिन हिलक-हिलक के सिसकारी भरती वह ज्यादा हकबकी, हैरान इसलिए थी कि जो कुछ उसे दिन भर रटाया जाता, बार-बार सुनाने को कहा जाता, सुनकर खुश हुआ जाता, उसे ही जब उसने पापा को खुश करने के लिए बार-बार सुनाना चाहा तो उसे चांटा मारकर अपमानित क्यों किया गया?..."

तोतली ताता असल में सुजाता है।

तोतली ताता असल में सुजाता है।

'ताता' तो उसने खुद अपने आपको तुतलाए बोलों में प्रचारित कर रखा है। हुआ यह कि सवा-डेढ़ की होने के साथ ही स्कूल में उसके दाखिले को लेकर दौड़-भाग करती नीना उसे उठाते-बैठाते, बाल काढ़ते, जूते पहनाते लगातार इंटरव्यू के लिए रटाती रहती थी।

'जब मैडम पूछेगी, व्हाट इज योर नेम चाइल्ड? तो क्या कहेगी मेरी बेबी?'

'ताता' - टप-टप दो तोतले ता पकी जामुन से टपक पड़ते- 'माय नेम इश ताता...'

थकान से निढाल नीना भरपूर राहत से भर जाती। एक बार, बस एक बार ताता को शहर के बेस्ट 'प्रेप' में एडमीशन मिल जाता तो वह अपने ऑफिस की मोना दीवान और सपना मजुमदार को दिखा देती कि हारी हुई पारी को जीत में बदल देना भी वह जानती है।

लेकिन इंटरव्यू वाले दिन, ऐन वक्त पर ताता को न जाने क्या हो गया। पहले तो वह सोती रही थी, फिर जगी तो अचानक चिड़चिड़ी हो उठी। नीना ने उसका मूड ठीक करने के लिए उसे चॉकलेट, पेप्सी सब लाकर दिए, लेकिन इंटरव्यू वाली मैडम के सामने उसने गरदन जो लटकाई, सो लटकाई। चेहरा मनहूस घोंघे सा सिकोड़ा। मजाल है जो नीना या स्कूलवाली

मैडम ताता की गरदन और चेहरा रत्ती भर भी दाएं-बाएं या ऊपर-नीचे हिला-डुला सकें। नीना बेचैन हो पसीने-पसीने हो उठी। कितनी बार दुलराया, फुसलाया, बोलो बेबी, बोलो न, बताओ मैडम को- व्हाट इज योर नेम, लेकिन ताता टस-से-मस न हुई।

अपना नाम बताना तो दूर, पूछे गए किसी भी सवाल का जवाब ही नहीं दिया। मैडम ने दो-चार खिलौने, डॉल्स दिखाईं। क्या ताता के पास डॉल है! लेकिन ताता का लटका चेहरा सुन्न सपाट। जैसे वह न कुछ सुन रही हो, न समझ रही हो। पूरी तरह प्रतिक्रियाविहीन।

चेहरे पर छाई खिसियाहट, परेशानी और खीज छुपाती नीना ने मैडम को समझाने की कोशिश की, लेकिन जैसी उम्मीद थी, मैडम ने बड़े तरीके से मुस्कुराकर कहीं और ट्राइ करने का मशविरा दे दिया।

नीना जैसे तमाचा खाकर लौटी। ताता को धप्प से सोफे पर डाला और रुआंसी होकर फट पड़ी शौनक के सामने। 'ऐसी मनहूस, कद्दू सी सूरत बनाए बैठी रही पूरे पौने घंटे, जैसे कसम खाई हो एक शब्द भी न बोलने की- एडमीशन क्या खाक होता।'

शौनक हैरान- 'क्या कहती हो? घर में तो चीख-चीखकर बात-बेबात 'माय नेम इश ताता, माय नेम इश ताता' की बकबक से जीना दुश्वार किए रहती थी। सुनते-सुनते कान पक जाते, कितनी बार चीखकर चुप कराना पड़ता- शटअप! सुन लिया, योर नेम इज ताता, ओ.के.! चलो अब जाकर अपना नया वाला एरोप्लेन चलाओ, नही तो ब्लॉक्स बनाओ। मुझे काम करने दो, आउट।'

लेकिन ताता पर तो जैसे तोतारटंत का भूत सवार होता, विशेषकर शौनक के ऑफिस से लौटने पर। दिन भर का रटा-रटाया बीसियों बार दोहराती। यहां तक कि एक दिन ऑफिस से भन्नाए लौटे शौनक का रोकते-न रोकते भरपूर चाँटा पड़ गया था ताता के गाल पर।

दर्द से बिलबिलाई ताता जोर से रो पड़ी, लेकिन हिलक-हिलक के सिसकारी भरती वह ज्यादा हकबकी, हैरान इसलिए थी कि जो कुछ उसे दिन भर रटाया जाता, बार-बार सुनाने को कहा जाता, सुनकर खुश हुआ जाता, उसे ही जब उसने पापा को खुश करने के लिए बार-बार सुनाना चाहा तो उसे चांटा मारकर अपमानित क्यों किया गया?

उस दिन शौनक बाद में पछताया भी, फिर ताता को बाजार ले जाकर बड़ी-सी एक चॉकलेट और नई डॉल खरीद लाया था। खरीदकर हलका हो लिया था। पछतावा काई सा खुरच छंट गया था। लेकिन इस वक्त नीना की दयनीय रुआंसी शक्ल देखकर वह वापस गुस्से से बौखला उठा-

'देना था वहीं जोर का एक चाँटा। बोल आपसे आप फूट जाते। मैंने पहले भी हजार बार कहा है न। अब भुगतो अपना किया। मैं होता न, तो....'

'क्या कर लेते तुम, जरा सुनूं तो?' शौनक की सहानुभूति प्रदर्शन की तर्ज पर शेखी बघारने वाला लहजा नीना को तमतमा गया- 'शादी के बाद से अब तक अपना किया ही तो भुगत रही हूँ। वहाँ चाँटा जड़ देने से एडमीशन हो जाता

क्या? उलटे तमाशा जरूर खड़ा हो जाता। हर बात में मैं होता तो, मैं होता तो... मैं पूछती हूं, क्यों नहीं होते, क्यों नहीं हुआ करते ऐसे मौकों पर तुम? मुझे सब मालूम है। हमेशा ऐसे मौकों पर ऑफिस की इमरजेंसी मीटिंग, वर्कशॉप आदि के नाम पर झूठ-सच बोल, अपना पिंड छुड़ाकर मुझे आगे कर देते हो, जिससे बाद में जरा भी ऊंचा-नीचा हो तो तुम अकड़कर अपना सुरक्षित वाक्य बोल सको- मैं होता तो... अब मुझे समझ में आया, ताता में ये आदत आई कहां से... ऐन मौके पर ठीक अपने पिता की तरह ही वह मौका ताककर दबोचती है।'

'देखो अब अपनी असफलता की तिलमिलाहट ख्वाहमखाह दूसरों पर उतारने की कोशिश तो तुम करो मत।'

शौनक का स्वर कड़ा हो गया। नीना दुगुने वेग से चीखी, 'हम दोनों की जिंदगी में सिर्फ मेरे 'फेल्योर' की थिगलियां और तुम्हारे 'एचीवमेंट्स के सितारे टॉकते जाना तुम्हारी हमेशा की खूबी रही है, साजिश भी कि दूसरों के सामने....'

'नीना प्लीऽऽज शटअप...'

नीना भी दांत पीसकर चीखी- 'यू शटअप'- यहां तक कि शौनक का उठा हुआ हाथ नीना ने दांत पीसते हुए बीच में ही रोककर मरोड़ दिया।

और अचानक दोनों की दृष्टि दूर खड़ी, सहमकर पीली पड़ती ताता पर गई।

'नो चाइल्ड नो।' नीना लपकी।

'आया!' शौनक दहाड़ा- 'बेबी को ले जाओ।'

आया, जिसका पूरा ध्यान अभी तक शौनक और नीना द्वारा दी जाने वाली अंग्रेजी की गालियों पर था और जो बड़े मनोयोग से रस ले-लेकर यह नाटक देख रही थी, अचानक चौंकी और झपाटे से ताता को पुचकारती अंदर चली गई।

शौनक आपे में लौटा। सोफे पर सिसकियों का ढेर बनी नीना से मुखातिब हुआ- 'सॉरी! जानती तो हो, ऑफिस में आजकल कितना टेंशन है। दरअसल, मैं भी घर तभी ही लौटा था।'

'और मैं? मैं तो ऑफिस पिकनिक मनाने के लिए जाती हूँ न! तुम्हें मालूम है, मनचंद आजकल जानबूझकर मुझे सुनाते हुए मोना दीवान की डिजाइनों की ज्यादा तारीफ करते हैं। इधर ली गई छुट्टियों की वजह से वे मुझे शगल के लिए ऑफिस आने वाले डिजाइनर समझते हैं। ऊपर से हर रोज आया की धमकियां, ताता का एडमीशन, मोना दीवान का टेंशन, उधर ऑफिस, इधर तुम, घर, आया, ताता, फोन, बिजली, गैस, लाइसेंस, कनेक्शन, फंगस, काक्रोचेज और....'

और कहते-कहते नीना की पीठ पर हिचकी का एक जोरदार हिचकोला उठा। हिचकोला सही मौके पर आया। शौनक पूरी तरह पिघल गया। (वरना सिसकी फूटने में एक मिनट की भी देर हुई होती तो नीना की फेंकी ईंटों के जवाब में दर्जनों पत्थर इधर भी तैयार थे।) क्योंकि ताता को एडमीशन के लिए ट्रेनिंग देने का छोड़कर तो बाकी सारे काम फिफ्टी-फिफ्टी के अनुबंध पर ही चल रहे थे। अंदर-अंदर शौनक

अब भी यही सोच रहा था कि किसी तरह नीना के गुस्से की यह बला टाली जाए, किसी भी शर्त पर। खैर, वैसे भी पिछले पूरे छह महीनों से नीना ताता को दाखिले के लिए जी-जान से तैयार करा रही थी, इसमें जरा भी शक नहीं।

शौनक और नरम पड़ा- 'चलो, तुम्हें लिज में पिज्जा खिला के लाता हूँ। मेरा भी लंच आज बड़ा बोर था।'

नीना कोहनी टिकाए बैठी रही, वह अब भी हताशा से उबर नहीं पा रही थी। 'मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा जैसे, बार-बार यही लग रहा है, काश! इस वाले स्कूल में एडमीशन हो गया होता, जरा सा भी बोल गई होती, क्योंकि प्रिंसिपल तो मुझसे बहुत ही इंप्रेस्ड थी।' (शौनक मन-मन मुस्कुराया बेशक, बाकायदे, 'पार्लर' होकर जो एडमीशन दिलाने गई थी ताता को।)

"किताबों में नीना ने जो पढ़ रखा था, ताता उसका उलटा करती। वह तीन-चार घंटों के बदले पौने घंटे में ही जग जाती। भूखी होने पर भी एकाध औंस दूध पेट में जाते ही बोतल की निपल से मुंह हटाकर बार-बार हँस पड़ती। शाम भर सोती और सुबह चार बजे से किलकारी मार-मार के हाथ-पैर फेंकना शुरू कर देती।..."

'छोड़ो भी, और भी बहुत से स्कूल हैं। छह महीने बाद सही।'

'पर इस स्कूल की बात ही और थी, और फिर लोगों से क्या कहेंगे? तुम्हारे-मेरे इतने कुलीग्स, दोस्त पहचान वाले कि ताता इंटरव्यू में फेल-एडमीशन नहीं हुआ।'

'हां-हां, नहीं हुआ- बस कह देंगे लोगों से। जो सोचना हो, सोच लें, करना हों कर लें। बस चलो उठो। हम दोनों को चेंज की सख्त जरूरत है। कम्मॉन...' शौनक ने प्यार से कंधे पर थपकी दी। 'आया के जाने के टाइम से पहले लौटना भी तो है।'

नीना ने दीवान से चुन्नी उठाकर गले में फंसाई। होठों पर लिपस्टिक घुमाई और पैरों में सैंडल डालती निकल गई।

दोनों चले गए तो आया न चैन की सांस ली। उसने सहमी, हदसी ताता को उसके खिलौनों, रंग-बिरंगी किताबों और कलरपेनों के बीच ला बिठाया। 'हाँ, अब अच्छे से खेलने का, चलो अपना किचन सेट से मुझे चाय बना के पिलाओ तो।'

और आया आधी पढ़ी 'तिलिस्मी कोठी' खोलकर बैठ गई।

ताता ने जोर से पैर पटका। 'नईं, मैं अपने कप में तुमको चाय नईं देती।'

'ओ.के. बाबा,' आया बिलकुल डिस्र्टब होना नहीं चाहती थी- 'मत दो बाबा, खेल खेलो अपना, देखा कितना अच्छा-अच्छा बुक्स छोटा-बड़ा पप्पी, एलीफैंट-डॉल...।'

'नई, मैं कुच्छ नईं खेलती- तुम मुझको श्नोवाइट की इशटोरी सुनाओ।' आया फिर बिदक गई- 'इशटोरी तो तुमको कित्ती बार सुनाया है, बेबी। वोई-वोई बात। अब्बी बस पिक्चर देखने का। ये देखो इशनोवाइट और

ये देखो उसको जहर का एप्पल खिलाने वाली रानी- बुड्ढ़ी अम्मा-बस?'

ताता अचानक रंगीन किताब पर बने चित्र की फ्रुकेड क्वीन, सौतेली रानी के बिचके होंठ, मिचमिची आंखें और सिकुड़े, बिदुरे चेहरे को देखकर चीखी- 'आया! तुम बुड्डी अम्मा हो... हो न!'

आया सिर से पांव तक अवहेलित हो जल उठी।

'बैड गल्ल बेबी। जाओ, अब मैं तुम्हें दुद्धू नईं दूंगी। बोलो, आया अच्छी।'

ताता ने अंदाजा लगाया, आया चिढ़ रही है। उसे मजा आया- 'नई तुम दंदी। तुम बुड्डी अम्मा।'

अपमान से सुलगकर आया का चेहरा और ज्यादा सिकुड़ता जा रहा था। बुरी तरह मुँह बिदोरकर उसने कहा 'गंदी बेबी।' लेकिन उसे जल्दी-से-जल्दी ताता की जबान पर आया वह शब्द भुलवाना भी था, वरना ताता का क्या ठिकाना, चार आए-गए के सामने कभी भी बुड्डी अम्मा उचार जाए।

'चलो, दुद्धू पीओ और सो जाओ- तुम्हारा मिजाज ठिकाने नईं है। जब पापा का जोर का थप्पड़ पड़ेगा न, तब्बी तुम्हारा अक्कल....।'

सुनने के साथ ही ताता को पापा, मम्मी, उनका लड़ना, बिफरना और फिर कंधे सहलाते, गले में चुन्नी डाले, साथ-साथ बाहर निकलना याद हो आया।

अचानक ही वह जैसे असहाय हो आई। उसने हथियार डाल दिए और चुपचाप आया की थमाई दूध की बोतल थाम ली। लेकिन दूध फीका, ठंडा और बेस्वाद लगा, पर सहमी ताता बेमन से बोतल मुँह से लगाए रही।

बोतल मुँह में दबाए ताता की उदास आँखें अपने चारों तरफ टकटोर रही थीं। एक-से-एक महंगी मोटरकारें, एरोप्लेन, हेली कॉप्टर, बिल्डिंग सेट, किचेन सेट, डॉल्स, स्टफ टॉएज पूसीकैट जिर्राफ, छोटे-बड़े टेडीबियर, और भी न जाने क्या-क्या, फर्श पर चारों तरफ रंग-बिरंगी किताबें, चरखी, फिरकनी, ब्लॉक्स....

और इन सबके बीच ताता और आया, आया और ताता। पैराग्राफ समाप्त। अचानक ताता की आंखें एक डॉल पर ठिठकर सहम गईं। यह वही डॉल थी जो पापा ने उसे चाँटा मारने के बाद खरीदी थी।

अगले हफ्ते अचानक आया छोड़ गई। नीना सनाका खा गई। तैश में आकर बिफरी- 'ऐसे कैसे छोड़ सकते हैं हम तुम्हें? तुम्हें मालूम है मुझे ऑफिस जाना होता है?'

'आपने तो बोला था, बेबी का एडमीसन हो जाएगा।'

'आया! तुम्हें तो अच्छी तरह मालूम है कि बेबी का एडमीशन अभी नहीं हो पाया।'

'लेकिन हम लोगों को भी अच्छा जॉब रोज-रोज हाथ पे रका तो नहीं रैता न, मेम साब!' आया ने नक्शा झाड़ा।

'तो तुम अभी छोड़ना चाहती हो? 'नीना दनदनाती हुई अँदर गई और पगार के नोट उसके सामने पटककर चीखी- 'ओ.के., गेट लॉस्ट।'

आया भुनभुनाती हुई सलाम मारती निकल गई थी।

ताता ने पूरा दम लगाकर जोर से

तुतलाई- 'गेत आउत', फिर सहमी सी सोफे पर निढाल ढुलकती मम्मी को देखकर दुबारा बुदबुदाई- 'आया बुड्डी अम्मा, दंदी आया...। वह मम्मी की मदद करना चाहती थी, पर कैसे करे? कुछ न सूझा तो वह सोफे पर निढाल पड़ी नीना से चिपक गई। नन्हें नन्हें लटपटे बाल गालों पर झूल आए। नीना चौंकी। वह बेतहाशा ताता को चूमने लगी। आज बहुत दिनों बाद मम्मी ने उसे इतना प्यार किया था। ताता यह भी धुंधला सा समझ रही थी कि मम्मी कहीं उसे लेकर परेशान है। लेकिन ताता आखिर मदद करेगी तो कैसे? उसकी भोली आँखें जैसे नीना से पूछ रही थीं - 'मेरी गलती क्या है?'

हाँ, गलती कहीं नहीं थी। किसी तरह की नहीं। नींव तो बहुत सोच समझकर रखी थी शौनक और नीना ने। अपने वैवाहिक जीवन की एक-एक ईंट नाप-जोखकर, पूरी सतर्कता और होशियारी से, दोनों के दोनों पढ़े-लिखे नौकरी-पेशा, समझदार और मैच्योर। शादी का मतलब है, किसी का किसी पर दबाव या अहसान बिलकुल नहीं, इसलिए शुरुआत से ही सारे हिसाब-किताब बराबर-बराबर। अपने-अपने शौक, सहूलियतें, कॅरियर और घर-बाहर काम के घंटों का भी बराबर विभाजन और पैसों की व्यवस्था भी अपने तरीके से। एक-दूसरे की सीमा में हस्तक्षेप बिलकुल नहीं।

इस सूझबूझ पर दोनों ने अंदर-अंदर अपनी-अपनी पीठ ठोंकी थी। शादी से पहले जिस तरह रेस्टोरेंटों और कॉफी हाउसों से कई-कई मर्तबा इकट्ठे होकर दोनों ने आगामी जीवन के सारे मुद्दे हर कोण से डिस्कस किए थे, कोई तीसरा सुनता तो यही सोचता कि यह किसी विवाह या पश्चिम जैसे मधुर रिश्तों के बजाय किसी बराबरी के हकदारी दावेवाला कानूनी इकरारनामा है।

अपनी तरफ से नीना ने बड़ी बारीकी से बस एक मुद्दा और जोड़ा था कि पति-पत्नी ही नहीं, किसी अन्य तीसरे की दखलअंदाजी भी दोनों के बीच गलतफहमी का कारण बन सकती है। समझदार को इशारा काफी। शौनक ने फौरन नीना को यह कहकर निश्िंचत कर दिया था कि शुरू से कस्बे में रह आई माँ ने हमेशा शौनक को शहर के अच्छे स्कूलों में पढ़ाया है। और खुद कस्बे के उसी मकान में, ऊपर-नीचे दो-चार कोठरियां बनवा, उन्हें किराए पर उठा अब तक सारा जीवन एकादशी, प्रदोष, जन्माष्टमी, रामनवमी तथा गबन, गोदान और साकेत की सोहबत में काट ले गई हैं। वैसे भी माँ की प्रकृति और जीवन-शैली कभी उन दोनों के बीच हस्तक्षेप करने वाली या बाधक नहीं बनेगी।

लेकिन इतना सोच-समझकर बिछाए गए सारे समीकरण ताता के आने के साथ ही लड़खड़ा गए थे। हालांकि ताता का आगमन कोई दुर्घटना नहीं थी। साल-डेढ़ साल में आखिर एकाध बच्चे का लाना तो तयशुदा था ही। और लाएंगे तो कमर कस के पूरी तैयारी और समझदारी के साथ।

लिहाजा नीना ने पूरे नौ महीने किताबों पर किताबें पढ़ीं। मैगजींस पर मैगजींस। उनमें लिखी सारी हिदायतें पालीं। इतने से इतने महीने बच्चे का इतना विकास, इतना ज्ञान, ये लक्षण,

ये सावधानियां, पूरा बाल मनोविज्ञान और बच्चे को पालने के तरीके कंठस्थ।

शौनक भी प्राउड फादरहुड का खिताब हासिल करने के लिए सोत्साह जुट गया। बेबी लोशन, क्रीम पाउडर, झूले और कांट से लेकर टब, बच्चा गाड़ी तक-बाप रे! सेचा नहीं था कि एक बच्चे की अगवानी इतनी खर्चीली होगी। यह दोनों ने एक-दूसरे से छिपकर मन में सोचा। ऊपर-ऊपर तो एक-दूसरे को समझाते हुए यही कि प्राउड पेरेंटहुड से गुजरने की थ्रिल के एवज में इतना भी नहीं करेंगे दोनों??

हां, बच्चा भी फिफ्टी-फिफ्टी हम दोनों के खाते में जाएगा। पूरा डिसिप्लिन, पूरी हाइजैनिक कंडीशन। डिटॉल में नैपी धोएंगे। इंफेक्शन से बचाएंगे। टाइम से दूध। टाइम से नींद। हमारा बच्चा टाइम से सोएगा, टाइम से जागेगा। हम बारी-बारी से उसकी देखभाल कर लेंगे, दुलार-पुचकार लेंगे। पूरी सुख-सुविधाओं से बच्चे को पालेंगे। स्वस्थ पोषण और नए अच्छे स्कूल में एडमीशन यानी सवा-डेढ़ साल से इंटरव्यू की तैयारी शुरू- 'माय ने इश ताता....।'

लेकिन पैदाइश के साथ ही ताता ने किताबों की एक न मानी। किताबों में नीना ने जो पढ़ रखा था, ताता उसका उलटा करती। वह तीन-चार घंटों के बदले पौने घंटे में ही जग जाती। एक बोतल दूध खत्म करने के बीच तीन बार सोती। भूखी होने पर भी एकाध औंस दूध पेट में जाते ही बोतल की निपल से मुंह हटाकर बार-बार हँस पड़ती। शाम भर सोती और सुबह चार बजे से किलकारी मार-मार के हाथ-पैर फेंकना शुरू कर देती। प्राउड फादर, प्राउड मदर निहाल हो लेते, लेकिन दोनों के ऑफिसों की फाइलें उन्हें आतंकित करती होतीं। नीना को दर्जन भर शर्ट की डिजाइनें पूरी करनी होतीं। शौनक को अगले पूरे साल के बजट का एस्टीमेट। आँखें थकान और बोझ से निढाल। इस वक्त, हाँ इस वक्त तो ताता को सोना ही चाहिए। आखिर इस वक्त वे उसे कैसे वक्त दे सकते हैं?

"आया से पहले एक प्रस्ताव 'माँ' के पक्ष में भी उठा था। माँ चौबीसों घंटे खयाल रखेगी। आया पेड सर्वेंट होगी, माँ पेड न होने पर भी खाना-पीना तो सारा अपने जैसा है। बड़ी देर तक आया और माँ तराजू के दोनों पलड़ों पर ऊपर-नीचे होती रहीं, अंत में सारे मोल-भावों के बाद बोली आया के पक्ष में गिरी। पूरे डेढ़ साल गाड़ी अटक-अटककर चली भी, लेकिन अब?..."

लेकिन किलकारी मारती ताता को क्या मालूम कि उसके पापा के इस नए विभागवाला बॉस किसी-न-किसी बहाने शौनक में चूकें निकालने की तरकीबें ढूंढ़ता रहता है, जिससे वह उसकी जगह अपने आदमियों की भरती कर सके। ताता को यह भी नहीं पता कि उसे पुचकारने, दुलराने के बीच भी उसकी मम्मी नीना के दिल पर अचानक सनाका सा बैठ जाता है कि कहीं

इन छह महीनों की मैटरनिटी लीव का फायदा उठाकर साहनी ने मोना दीवान को डिपार्टमेंट हेड का तमगा सौंप दिया तो? तो क्या कर लेगी वह?

ताता यह भी नहीं जानती कि अभी कुछ पांच महीने की भी नहीं हुई वह कि उसकी मां पर ऑफिस जॉइन करने का 'टेंशन' और डिप्रेशन हावी होने लगा। और धक्के दे-देकर निकाले गए खयालों के बीच भी एक मुंहफट सवाल उसे परेशान करता ही रहा कि कहीं ताता को इस दुनिया में लाकर उसने गलती तो नहीं की? शादी, बच्चे सबकुछ अपनी-अपनी जगह ठीक होने पर भी यह छूटा हुआ समय, यह गंवाया गया अवसर फिर कभी हाथ आएगा भी या नहीं?

इतना ही नहीं, यह सब सोचते हुए खुद की नजरों में जलील भी होना कि छिह! क्या मेरी परिभाषा है, प्राउड मदर की? फिर एक विद्रोही आक्रोश भी कि लेकिन प्राउड मदर ही क्यों लॉस में रहे? प्राउड फादर क्यों नहीं?

इसलिए ठोस वास्तविकता की जमीन पर आया तलाश ली गई थी।

आया से पहले एक प्रस्ताव 'माँ' के पक्ष में भी उठा था और पूरी तरह पूर्वग्रह रहित होकर विचार-विमर्श किया गया था। पहले से तय करके कि दोनों में कोई किसी की बात का बुरा नहीं मानेगा। फैक्ट इज फैक्ट। आया को नीना निर्देश दे सकती है। माँ को नहीं। लेकिन माँ चौबीसों घंटे रहेगी; पर फिर थोड़ा-बहुत खयाल रखना ही होगा। आया पेड सर्वेंट होगी, पगार ज्यादा लेकिन खाना अपना खुद लाएगी। माँ पेड न होने पर भी खाना-पीना तो सारा अपने जैसा है। बल्कि वे तो शुरू से रात में सोने से पहले एक गिलास दूध भी पीती आई हैं।

बड़ी देर तक आया और माँ तराजू के दोनों पलड़ों पर ऊपर-नीचे होती रहीं, अंत में सारे मोल-भावों के बाद बोली आया के पक्ष में गिरी। पूरे डेढ़ साल गाड़ी अटक-अटककर चली भी, लेकिन अब?

आया छोड़ गई थी और नीना की दहशतजदा आँखों के सामने अपना सजा-सजाया फ्लैट, परदे, दीवान और गुलदस्ते सबकुछ एक विकराल ब्लैक होल में तब्दील होते जा रहे थे।

अगला पूरा महीना जबरदस्त गहमागहमी का था। शौनक को शायद ट्रेनिंग के सिलसिले में जर्मनी जाने का चांस मिले और नीना पर खुद बाहर से मिले ऑर्डर की भरपाई करने की जिम्मेदारी।

रातोरात कहां से आया तलाश लाई जाए, वह भी चार-छह महीने के बच्चे के लिए नहीं, अच्छी-खासी बोलती-समझती ताता के लिए?

इसलिए अब बहस की कोई गुंजाइश नहीं थी। तर्क-वितर्क के तराजू-बटखरे एक किनारे रखे, शनिवार की आधी छुट्टी पर नीना ने ताता की बेबी मीटिंग की और शौनक इतवार की शाम माँ को उनकी छोटी अटैची के साथ लिये लौटा।

'ताता! देखो बेटे, कौन आया है?' यह प्यार और आदर से ज्यादा, जल्दी से जल्दी ताता को हिला-मिला देने की चिंतावश ही ज्यादा कहा गया था। 'बुड्ढी अम्मा।' ताता ने

मटककर अरुचि से कहा और इठलाकर अपना हवाई जहाज जमीन पर तेज आवाज के साथ चलाने लगी।

'बैड गर्ल।' शौनक अपने आपको अपमानित महसूस कर चीखा। उन दोनों के डिसिप्लिंड ट्रेनिंग की धज्जियां उड़ा दी थीं ताता ने, मां के सामने।

'यू बैड ब्वॉय...'

'शटअप!'

'यू शत्तप'

'नई बुड्डी अम्मा,' नीना ने बात संभाली- 'नहीं बेटे, दादी...'

माँ ने बौखलाते-खिसियाते बेटे-बहू को संभाला। 'कह लेने दो न! अड़ोगे तो बच्चा भी अड़ेगा। मैं कोई बाहर की हूँ?'

तेतली होने पर भी ताता इतना समझती थी कि ये तो उससे चिढ़ने-मुरझाने के बदले उसका मटकना देख कर उलटे निहाल हो रही हैं। फटकार भी उलटे मम्मी-पापा को पड़ गई।

नीना जब अंदर गई तो ताता चुपके से पास आई और गोल-गोल आंखें झपकाकर धीमे से पूछ गई- 'तुम दादी ओ (हो)?'

दादी को शरारत सूझी- 'तुम ताता हो?'

ताता चौकी। फिर इठलाकर तुतलाई- 'माय नेम इश ताता-'

दादी बोली- माय नेम इश दादी- ताता की दादी।'

ताता किलककर हँस दी। फिर वही शान और रोब से अपने एक-एक खिलौने ला-लाकर दिखाने लगी- 'तुमने मेला एलोप्लेन देका ऐ? ... मैं लिंडा डॉल के लिए चाय बनाती हूँ। तुम भी पीओगी? लो, नई अबी नईं पीना- गनम है- देका? तुमको इशटोरी आती है? मैं दो-दो टेडीबियर के साथ सोती हूँ।'

सुबह नीना को ताता को इकझोरकर जल्दी-जल्दी उठाने की जरूरत नहीं पड़ी। ताता जब तक आँखें मलती उठी, नीना, शौनक बाऽऽय करते जल्दी-जल्दी ऑफिस के लिए निकल रहे थे।

दादी दरवाजा बंद कर लौट रही थीं। ताता को दादी बड़ी अजूबा लगीं। न यह आया थी, न यह आंटी। एप्पल आरेंज वाली ताई भी नहीं। और न कपड़े धोकर पौंछा मारने वाली शेवंती।

उसने दादी के पास आकर पूछा-

'दादी! तुम कौन ओ?'

निहाल दादी ने उसे अपनी गोदी में समेटकर कहा, 'अपनी ताता की दादी और तुम्हारे पापा की मम्मी।'

'तुम मम्मी ओ?.... फिल तुम ऑफिस चली जाओगी?'

'नहीं, मैं नहीं जाऊंगी ऑफिस।'

'क्यों? मम्मी लोग तो सारे दिन ऑफिस रैती हैं।'

'हाँ, लेकिन दादी लोग ऑफिस नहीं जातीं।'

'फिल तुम घम्में (घर में) क्या कलोगी?'

'मैं ताता के संग खेलूंगी?'

ताता को लगा, दादी झूठ बोल रही है। आया की तरह, पापा की तरह, मम्मी की तरह। ताता तो अपने खिलौने के साथ खेलती है। आया जादुई कालीन पढ़ती है। मम्मी-पापा

छुट्टी के दिन भी सुबह से ही सारे दिन क्या-क्या सफाई, क्या-क्या मरम्मत, उठाना, लाना, धरना, समेटना। दर्जनों लोगों को कर्टसी कॉल हाअअय, हाउ स्वीट, हाउ नाइस, हो-हो, ही-ही और मुँह बनाते हुए निहायत नाटकीयता से फोन कट करना। इस तरह छुट्टी के एक पूरे दिन का रस नीबू की तरह निचोड़ डालना।

लेकिन दादी तो सचमुच कहीं नहीं गईं। ताता उनके पीछे-पीछे कौतुक से घूमती रही। दादी ने अपनी अटैची खोली।

'ये तुमाले कपले हैं? बश इतने?'

'हाँ!' दादी हँसी।

'दादी! तुम पुअल हो? पुअल बच्चे दंदे होते हैं। वे सड़क पे खेलते हैं। दंदी चीज खाते हैं, इशी शे कार के नीचे दब जाते हैं.... ऐक्शीडेंट।'

दादी ने अटैची से पूजा की घंटी, पीतल की आरती, अगरबत्तीदान, राम कृष्ण के चित्र और छोटी सी रामायण निकाली।

'ये तुम्हाली बुक है?'

'हाँ!'

'तुम्हाले पास अच्छी बुक्श नईं हैं? मेले पास ब्लू, रेड और येल्लो बुक्स हैं।' फिर एकदम तमककर बोली, 'मैं तुमें अपनी बुक्स नईं दूंगी, तुम दंदी कर दोगी।'

दादी घंटी निकालकर रखने लगीं तो वह टुन्न से बोल गई। ताता को ये आज सारे खिलौनों से न्यारी लगी। उसने ललचाई नजरों से घंटी की तरफ देखा।

'ये तुमाली है? तुम इशे बजाती हो?'

दादी हँस दीं- 'तुम बाजाओगी लो बजाओ। पूजा करते समय हम दोनों बजाएंगे।'

ताता थोड़ा हिचकी, फिर खुश होकर घंटी बजाने लगी। दादी ने भगवान जी के चित्र एक छोटी चौकी पर सजा दिए। रूई की बत्ती बनाई और पीतल के दीपदान में तेल में भीगी बत्ती जलाई। फिर ताता के हाथ में दीपदान पकड़ाए-पकड़ाए गोल-गोल घुमाकर आरती करवाई। ताता ने एक बार दादी को गाते सुना, फिर खूब ऊंची आवाज में गलत ही तुतलाती गाती रही। और लगातार टुनुन-टुनुन घंटी बजाती रही।

चित्र में भगवान के 'एवमस्तु' की मुद्रा देख ताता ने पूछा, 'दादी, भगवानजी क्या कैते हैं?'

'कहते हैं, ताता बड़ी गुड गल्ल है।'

'औल ये वाले भगवानजी क्या कैते हैं?'

'कैते हैं, ताता खूब बड़ी सी हो जाए?'

ताता की आंखें खुशी से हुलसीं कि एकाएक झप्प से बुझ गईं- 'नईं, मैं बली होकल ऑफिस नहीं जाऊंगी।'

दादी भौंचक्क! 'ठीक है, लेकिन क्यों नहीं जाओगी?'

'बताऊं? ऑफिश बहुत दंदा होता है। वो मम्मी, पापा से झगड़ा करता है।' फिर दादी के कानों के पास आकर धीरे से बोली, 'और ऑफिश के पाश एक बश्टर्ड बॉश होता है।'

दादी सकपका गईं, 'तुमसे किसने कहा, बच्चे?'

ताता ऐंठी- 'नो बडी... आय नो।'

दरवाजे की घंटी बजी।

ताता चीखी- 'दादी, मत खोलो। रूपा आंटी होंगी। वो बौत 'बोल' (बोर) कती हैं। उनका बेबी राउल बौत चीखता है।'

दादी फिर अचकचाईं- 'तुमको कैसे मालूम?'

ताता फिर इठलाई, 'आई नो।'

दरवाजे पर आया थी। उसने सोचा था, ऑफिस से छुट्टी लेकर नीना फोन पर फोन मार 'आया' तलाश रही होगी। उसे देखते ही उसकी बॉछें खिल जाएंगी। सौ-डेढ़ सौ बढ़ाकर वापस आने की मिन्नतें करेगी। लेकिन मांजी को देखकर चौंक गई। अंदर जाना चाहा- 'ताता बेबी को संभालने के वास्ते आई होंगी? क्यों मांजी? फिर भी। अपना ठिकाना छोड़कर आखिर कितना दिन रह पाओगी?'

'जब तक ताता चाहेगी।' आया चौंक गई। ताता भी। दादी तो सचमुच ताता के साथ ही रहती हैं, खेलती हैं। अबोध मन में दोस्ती का, विश्वास का, आश्वस्ति का एक अक्स सा उभरता गया।

आया चली गई तो दादी ने दरवाजा बंद कर पूछा, 'अब ताता का दूध पीने का टाइम हुआ न!'

'मैं टाइम शे दूद्दू नहीं पिऊंगी तो तुम बुड्डा बाबा को बुलाओगी न।'

'नहीं तो। बुड्डा बाबा कौन?'

'आया बुलाती थी। आया दंदी, बैड गल्ल... दादी। अब आया आए न तो तुम कैना गेट आउट। गेट लॉस्ट....'

'नहीं, गेट आउट किसी को नहीं कहते, बुरी बात है।'

'कैते हैं। मैं पापा को भी कैती हूं।' ताता उत्तेजित होकर बोली।

'अब नहीं कहना, क्यों कहती हो?'

'क्योंकि पापा कैते हैं। बताऊं कैशे? खूब गुश्शा होके- ताता! गेट आउट- ऐशे कैते हैं।'

'अच्छा! मैं पापा को मना कर दूंगी कि ताता को ऐसे नहीं कहें।'

ताता खुश हो गई। अपने सारे ब्लॉक्स लाकर बोली, 'दादी! मैं तुमाले लिए घल बनाऊं?'

'क्यों? हमारे पास घर है तो।'

'ये तो हमाला घल है न! तुमाले लिए।'

दादी ने जाने क्या सोचकर कहा, 'अच्छा ठीक है, बना दो।'

लेकिन ताता का मन उचट गया। उसने घर नहीं बनाया। पूछा, 'दादी! तुमाले पाछ मालूती थाउशेंड ऐ?'

'नहीं, लेकिन मेरे पास एक बहुत अच्छी चीज है।'

'बताओ क्या?'

'बताऊं? मेरे पास एक बहुत 'शुईट' सी ताता वन थाउजेंड है।'

ताता दादी के जोक पर किलकारी मारकर हँस दी। फिर तो ताता और दादी का प्रिय खेल ही बन गया। रोज दिन में कभी भी दादी एक तरफ आंखें बंद कर बैठ जातीं। फिर हाथ फैलाकर एक-एक शब्द पर रूक-रूककर कहतीं- 'मेरी-मारुति-वन-थाउजेंड कौन?'

थोड़ी दूर पर पूरे सस्पेंस में खड़ी ताता, हवा के झोंके सी आकर, दादी की गोदी में

बैठकर, खुशी से चीखकर जवाब देती- 'ताता'।

उतरी शाम अचानक कस्बे से गिरधारी आया। बताया- 'आंधी-तूफान और घनघोर बरसात से पूरबवाली कोठरी की आधी छत उधड़ गई। आपके संदूक, पेटियां सब उघारी हैं, माताजी। किसी तरह बाल-बच्चों की निगरानी में छोड़ आया हूं... पर कब तक?... वैसे भी आप तो चारई-छह दिन बोल के आई रहीं। सब लोग वहां परेशान हैं कि माताजी बीमार-ऊमार पड़ीं क्या?'

ताता ने छोटी बिल्लौरी आंखों से सब देखा, सब भांपा-

'दादी! तुम क्यां (कहां) जाती ओ?'

'अपने घर बेटे, तुम मेरे लिए घर बनाती थीं न!'

'नईं।' ताता ने आदेश दिया- 'तुम नईं जाना।'

दादी ने बच्ची का मान रखा- 'अच्छा, नहीं जाऊंगी।'

लेकिन ताता के मन में अंदेशा बैठ गया। दादी चली जाएंगी। मम्मी-पापा भी तो कितनी बार ऐसे ही कहते हैं, बाद में चले जाते हैं। झूठ बोलते हैं।

दादी भी किशनजी, राधाजी, घंटी, आरती सबकुछ लेकर चली जाएंगी। ताता के पास फिर से, खूब भड़कीले रंगोंवाली ढेरमढेर किताबें, स्टफ टॉएज और तेज आवाज करने वाले भोंपू बजाते हवाई जहाज, मोटरकारें, ट्रेनें, चरखियां रह जाएंगी और सबके बीच अकेली ताता... या फिर आया, बुड्डी अम्मा। बुड्डा बाबा वाली।

अचानक वह वापस दादी के पास आई-

'दादी! तुम जाना मत! प्रॉमिश!' दादी ने अचकचाकर देखा- ताता की आंखें दुबारा पूछ रही थीं प्रॉमिश दादी?

ताता के अनजाने उसकी बिल्लौरी आंखें झील सी डभाडभ थीं। इतने कीमती आँसू अरसे से किसी ने मांजी के लिए नहीं बहाए थे। उन्होंने शौनक को एक तरफ बुलाकर कहा, 'तुम्हारा हर्ज तो होगा, पर किसी तरह इस इतवार चले जाते तो अच्छा था। संदूक और पेटियां दूसरी कोठरी में डालकर ताला लगाकर आ जाना। मैं न जा पाऊंगी।'

'लेकिन क्यों मां? एक-दो दिनों की तो बात है?'

'एक-दो दिनों की बात नहीं, यह मेरे और ताता के बीच के भरोसेवाली बात है। विश्वास छोटे या बड़े नहीं हुआ करते। चाहे बच्चों के हों या बूढ़ों के।' कहीं से सुनती, भांपती ताता दौड़ी आकर दादी की गोदी में समा गई- 'थैंक्यू दादी!'

-सूर्यबाला

शास्त्री नित्यगोपाल कटारे

ग्राम टेकापार (गाडरवारा) जि० नरसिंहपुर (म.प्र.) में जन्में और वर्तमान में होशंगाबाद में निवास कर रहे नित्यगोपाल कटारे सुप्रसिद्ध कवि, व्यंग्यकार हैं। 'शास्त्री' उपाधि से अलंकृत एवं अध्यापन कार्य से जुड़े नित्यगोपाल कटारे का एक संस्कृत कविता संग्रह 'पञ्चगव्यम्', एक हिन्दी कविता संग्रह 'विपन्नबुद्धि उवाच', और एक संस्कृत व्यंग्य काव्य 'नेता महाभारतम्' प्रकाशित है। पन्द्रह साहित्यिक पुस्तकों का संपादन।

ईमेल - gopal.katare@gmail.com

नालायक होने का सुख

-शास्त्री नित्यगोपाल कटारे

"आज के जमाने में जो जितना लायक व्यक्ति है, उतना ही दुखी, और जो जितना नालायक है, उतना ही सुखी है।" अब आप को ही देख लीजिये आप कवि हैं, लेखक हैं, संगीतज्ञ भी हैं, दो-तीन भाषाओं के भी ज्ञाता हैं, इसीलिए सैकड़ों लोग आपके पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हैं। मन को चैन नहीं, शरीर को आराम नहीं और हमेशा दुखी। और एक हमें देखिए, हम पूरी तरह नालायक हैं, हमें कोई माँगने पर भी सेवा का अवसर नहीं देता, इसलिए हम चैन की वंशी बजाते हैं।..."

इक्कीसवीं सदी के मुख में सबसे आगे प्रवेश करने की प्रतिस्पर्धा में जहाँ लोगों की भीड़ बेचैन हैरान परेशान होकर तेजी से भागी चली जा रही है, वहीं जब कोई व्यक्ति तनावमुक्त और प्रसन्न दिखाई देता है, तो आश्चर्य के साथ-साथ उसके प्रति ईर्ष्या भी अनायास उत्पन्न हो जाती हैं। भला इतनी समस्याओं, इतने खतरों और इतनी निराशाओं के बीच आदमी तनावहीन कैसे रह सकता है? जो व्यक्ति प्रातः समाचार पत्र का मुखपृष्ठ पूरा पढ़ ले वह दिन भर हँस कैसे सकता है? राजनीतिज्ञों के गैर जिम्मेदार वक्तव्य, सामूहिक हत्या या आत्महत्या के समाचार, चोरी और बलात्कार की खबरें पढ़कर कोई सभ्य नागरिक तनाव मुक्त होकर मुस्करा ले तो सचमुच आश्चर्य की ही तो बात है। ऐसे अनिश्चितता के वातावरण में भी विपन्न बुद्धि को पान की दूकान पर जब घण्टों खड़े रहकर सिगरेट के कश खींचते हुए ठहाके लगाते देखता हूँ, तो उसके भाग्य से अनायास ही जलन होने लगती है। कैसे इतनी फुरसत मिल जाती है इसे? दूरदर्शन

पर प्रदर्शित होने वाला एक भी क्रिकेट मैच नहीं छोड़ता। शाम को ताश भी खेल लेता है। बचे समय में पान की दूकान पर शहर की अत्यन्त गोपनीय घटनाओं का सूक्ष्मता से वर्णन कर श्रोताओं का मन मोह लेता है। रसिक श्रोतागण चाय पिला-पिलाकर इन घटनाओं की विवेचना करवाते हैं। किस खिलाड़ी ने कितने रन बनाये, कौन अम्पायर ने किसे गलत ढंग से आउट किया, किस किस खिलाड़ी ने मैच फिक्सिंग करके कितने पैसे लिये बगैरा... बगैरा बतलाकर वह सामान्य ज्ञान में अग्रणी होने का प्रमाण पत्र भी हासिल कर लेता है। विवाह के हर एक समारोह में द्वाराचार से लेकर पाणिग्रहण तक उपस्थित रह कर बारातियों से अधिक अकेले ही सिगरेट पी लेता है। घरधनी को छोड़कर सभी लोग उसे समाज सेवक कहते हैं।

> "पिता जी ने मुझे महानालायक की उपाधि से अलंकृत कर दिया और घर में निर्देश दे दिया कि इस नालायक से कोई काम न करवाय जाए। मेरी यह ख्याति पिताजी के मार्फत दूर-दूर तक फैल गयी थी। वे मेरा परिचय देते वक्त नालायक शब्द कभी नहीं भूलते थे। उस समय मुझे बुरा लगता था, क्योंकि तब मैं नहीं जानता था कि नालायकियत ही सुख का मूल होती है।...

विपन्न बुद्धि से जब हमने उसके सुखी जीवन का राज जानना चाहा, तब उसने रहस्योद्घाटन के अन्दाज़ में मुस्कराते हुए कहा- "देखो भाई! आज के जमाने में जो जितना लायक व्यक्ति है, उतना ही दुखी, और जो जितना नालायक है, उतना ही सुखी है।" अब आप को ही देख लीजिये आप कवि हैं, लेखक हैं, संगीतज्ञ भी हैं, दो-तीन भाषाओं के भी ज्ञाता हैं, इसीलिए सैकड़ों लोग आपके पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हैं। मन को चैन नहीं, शरीर को आराम नहीं और हमेशा दुखी। और एक हमें देखिए, हम पूरी तरह नालायक हैं, हमें कोई माँगने पर भी सेवा का अवसर नहीं देता, इसलिए हम चैन की वंशी बजाते हैं।

बचपन से ही मुझे नालायक की उपाधि मिल चुकी है। घर में आये मेहमानों के सामने ही मैंने अपने पिता जी को बताया, कि सेठ ने चाय की पत्ती देने से मना कर दिया है, क्योंकि आप ने पुरानी उधारी चुकता नहीं की है। बस फिर क्या था...पिता जी ने मुझे महानालायक की उपाधि से अलंकृत कर दिया और घर में निर्देश दे दिया कि इस नालायक से कोई काम न करवाया जाए। तभी से मैं घर के कामकाज से मुक्त, मस्त खेलता रहता था। मेरी यह ख्याति पिताजी के मार्फत दूर-दूर तक फैल गयी थी। वे मेरा परिचय देते वक्त नालायक शब्द कभी नहीं भूलते थे। उस समय मुझे बुरा लगता था, क्योंकि तब मैं नहीं जानता था कि नालायकियत ही सुख का मूल होती है। गाँव के प्रौढ़ और स्कूल के शिक्षक मेरे नालायकपने के कारण दूसरे बच्चों की तरह बेगार नहीं करवाते थे। फलस्वरूप विद्यार्थी जीवन आनन्द से बीत

गया। नौकरी में आया तब मेरी समझ में भली-भाँति आ चुका था, इसलिये प्रारम्भ से ही मैंने अपने आप को नालायक सिद्ध करना शुरू कर दिया। जो भी काम मिलता उसे इस तरह करता कि काम करवाने वाले वर्षों तक पछताते रहते और कहते... किस नालायक से पाला पड़ा है...।

एक बार साहब ने हमें विदेशी नस्ल का कुत्ते का पिल्ला लेने भेजा, हमने पाँच हजार रुपए में सुअर का पिल्ला लाकर साहब के घर बाँध दिया और उन्हें समझा दिया कि यह नई विशेष प्रजाति का कुत्ता है, जो बड़ा होकर बहुत भव्य और खूँखार दिखेगा। बेचारे साहब कई दिनों तक कुत्ते के भरोसे सुअर के बच्चे की सेवा करते रहे। कुछ दिनों बाद उसके आहार-विहार के लक्षणों से जब उन्हें असलियत का पता चला, तो उन्होंने मुझे शासकीय स्तर पर महानालायक का अवार्ड दे डाला। तभी से मुझसे साहब लोग निजी कार्य कराने से डरने लगे।

एक बार हमारे साहब ने मेरी ड्यूटी रेस्ट हाउस में लगाई। बोले- "विपन्नबुद्धि अपना उल्लू का पट्ठा बड़ा साहब आ रहा है, व्यवस्था करना।" हमने कहा ठीक है। बड़े साहब जब रेस्ट हाउस में पधारे तो हमने उनसे पूछा-

"साहब आप तो अकेले ही दिख रहे हैं? हमारे साहब तो कह रहे कोई उल्लू का पट्ठा भी आ रहा है।" फिर क्या था बड़े साहब ने छोटे साहब की फोन पर क्या खिंचाई की... और मुझे ड्यूटी से मुक्त कर दिया। तब से मैं पूरे डिपार्टमेंट में अत्यन्त नालायक के रूप में जाना जाने लगा और फिर कभी किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिये मुझे कभी याद नहीं किया गया। मैं आराम से शासकीय समस्त सुविधाओं का उपयोग करते हुये ताश खेल रहा हूँ। अब रही बात घर की, घर में अपने आप को नालायक सिद्ध करना थोड़ा कठिन किन्तु हम्माली से बचने का एकमात्र उपाय होता है। इसके लिये मैं पहले से ही सतर्क था। शादी के समय अपने सास-ससुर को रोते हुये देखकर मैंने उन्हें समझाया था कि- "आप बिल्कुल चिन्ता न करें जैसे आपकी बच्ची वैसी ही मेरी बच्ची।" सुनकर मेरी पत्नी और उसके माता-पिता रोना-धोना छोड़कर मेरी नालायकियत पर चिन्ता करने लगे थे। पत्नी के हृदय में मेरे नालायक होने की छवि प्रारम्भ से ही बन गई थी। रही सही कसर सड़ी गली सब्जियाँ महँगे भाव में लाकर और किराने की दूकान से ग्राहकों द्वारा लौटाया गया सामान लाकर पूरी कर दी थी। इस तरह मैं नम्बर एक का नालायक पति सिद्ध हो गया। परिणाम स्वरूप यह सारी हम्माली पत्नी ने स्वयं अपने अधिकार क्षेत्र में ले ली। अब इससे ज्यादा और सुख क्या होता है?

मेरी तरह नालायक प्रजाति के लोग हर एक क्षेत्र में पाये जाते हैं। यह प्रजाति दिनोंदिन अपनी संख्या में वृद्धि कर रही है और बिना कुछ काम किये आराम से सुखी जीवन व्यतीत कर रही है। इसलिये मैं आप सब से भी कहता हूँ कि यदि सुखी होना है तो नालायक बन जाइए।

-शास्त्री नित्यगोपाल कटारे

जया पाठक श्रीनिवासन

मुंबई में जन्मी जया पाठक श्रीनिवासन पेशे से चित्रकार हैं, 'अमूर्त आलंकारिक रुप' इनके चित्रों की विशेषता है। कविताएँ पढ़ने लिखने और कथक नृत्य में रुचि है। स्त्री-विमर्श, मिथकों में समसामयिक तात्पर्यों की तलाश, और समाज-राजनीति से जुड़े मुद्दे चित्रकला और कविता के विषय हैं।

ईमेल - jaya.p.srinivasan@gmail.com

कविताएँ

-जया पाठक श्रीनिवासन

1. यात्रा के दौरान

हम दोनों की भाषा
अलग थी ज़रा
बात होने लगी फिर भी

उसने अपनी भाषा में कहा
'सुख'
और हँस पड़ी
समुन्दर की लहर सी फेनिल हँसी
मैंने अपनी भाषा में सुना
बर्फ़ से ढँकी चोटियों के पीछे से
किरण फूटना
नदी में तिरती नाव की पतवार का
फूल जाना
बौराई हवा की संगत में

फिर उसने अपनी भाषा में कहा
'दुख'
और बेधती आँखों से देखने लगी
क्षितिज के पार
मैंने अपनी भाषा में सुना
कर्ज में डूबे किसान का
बादलों से छला जाना एक बार फिर
या
सूख जाना गाँव के सबसे छतनार पेड़ का

मैं उसकी भाषा नहीं जानती
न वो मेरी
फिर भी बार
मैं उसके सुख में
उसके दुख में उलझती रही
उसने जो कहा
मेरे मन के गुंबद में भरती गई
उसकी प्रतिध्वनियाँ
लगा -
जैसे मेरी और उसकी भाषा
सुदूर प्रांतों में ब्याही
सगी बहनें थीं बिल्कुल

2. बारहमासा

पृथ्वी कहती नहीं खुद उस से
अपने मन की बात
हाँ ! पलाश की सुलगती उँगलियाँ
उसकी ओर इंगित कर
लजा जाती है कुछ
और छेड़ती है फाग
बिना उसकी ओर देखे
आसमान में बहुत से नीले कमल
खिले होते हैं तब

धूप चढ़ाती है
धरती की देह पर
कनक के वरक़
आसमान नाचता है
धूल के ढोल बजाता हुआ
हाँफते हैं पहाड़ जंगल
थके भूरे बैल से
मटमैली नदी रातभर
खोजती है तारों में
चैती का धीमा राग.......

प्रकृति रोपती है धान के साथ
एक किसान के हिस्से का अवसाद
एक मौसम गुज़रता है
बादलों का कुशल-क्षेम पूछते हुए
जंगल भीगी हुयी बरसाती में
झींगुरों की फ़ौज लिए
सीले खडे रहते हैं पूरे भादों
पेड़ों की जड़ों में
उग आती खिले-हरे रंग के मखमल पर
कुकुरमुत्तों की बरात
मंत्रमुग्ध कोई
गाता है कजरी
आसमान को पिघलता देख

दरवेश सी पृथ्वी नाचती है
लगातार
अपनी धुरी पर
किसी अनहद नाद के आनंदातिरेक में
अंतरिक्ष में टँकी हुईं कविताएँ
गिरने लगती हैं उसकी ओर
मौसमी उल्काओं सी
कि सहसा
एक स्त्री उन्हें उठाकर गाने लगती है
एक मीठा गीत ■

-जया पाठक श्रीनिवासन

ब्लू स्कार्फ़ / आयल पेस्टल
चित्रकार : भविष्या खोखर, 2023

विनय उपाध्याय

ग्राम कालमुखी, जनपद निमाड़ (मध्य प्रदेश) में जन्में और रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र, टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल के निदेशक पद पर कार्यरत विनय उपाध्याय, संस्कृति, साहित्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय हैं। संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला, फिल्म आदि से जुड़े हैं तथा 'कला समय' एवं 'रंग संवाद' पत्रिका के संपादक हैं, 'विश्वरंग' के सांस्कृतिक समन्वयक और सूत्रधार हैं। अनेक राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक सम्मानों से सम्मानित/ पुरस्कृत।

ईमेल - vinay.srujan@gmail.com

नव पर नव स्वर दे...

-विनय उपाध्याय

"यूँ निराला की साहित्यिक मेधा और उनकी महिमा को कई कोणों से मापा जा सकता है लेकिन उनके पक्ष में सर्वाधिक महत्व की बात ये है कि निराला भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों, इतिहास, दर्शन और विश्व मानवीय दृष्टि से समृद्ध व्यक्तित्व थे। संघर्ष उनकी कुंडली में स्थायी भाव की तरह था। निराला इसी आँच में तपकर जीवन के गीत गाते रहे।..."

कलुष भेद तम, हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे... हताश और हारे हुए जीवन में उम्मीद के उजियारे की पवित्र कामनाओं को जगाता यह छंद यक़ीनन बुजुर्ग और प्रौढ़ हो चली पीढ़ी की स्मृतियों में अब भी किसी मंत्र की तरह झंकृत होता होगा। इसे बाँचते-सुनते ही अनायास पूरी कविता कौंध रही होगी। याददाश्त में लहराती धुनों के सहारे उनका कंठ गा रहा होगा- "वर दे वीणा वादिनी वर दे। प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव, भारत में भर दे" । अंतरजाल में गाफ़िल आज की नई नस्ल को यह वासंती संदेश बेगाना और कुछ पुरातन-पारंपरिक सा लगे लेकिन साहित्य की अमृत-बूंदों का आचमन कर ज़िन्दगी के होश थामने वाली पीढ़ी के लिए शब्द और वाणी की महारानी सरस्वती के प्रति यह निवेदन जीवन की धन्यता का उद्घोष है।

...भाषा-भारती, पाठ-एक। वर दे! कवि-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। यही तो था मंगलाचरण। किताब का पहला शब्द-पुष्प। पाँखुरी-पाँखुरी खिलता जैसे पूरे मानस को महक से भर देता। गुरूजी विस्तार से इस कविता का अर्थ समझाते और अबोध मन वाग्देवी के चित्र को कौतुहल से निहारता! भीतर कोई लौ जागती। एक भरोसा किसी कोने में जगह बनाता

कि तमाम दुश्वारियों के बावजूद कोई शक्ति है जो समाधान की रौशनी लिए हमारे कर्मपथ पर फैले काँटे बुहारकर राह आसान बनाती रहेगी।

इस कविता का संदर्भ इसलिए कि वसंत की पंचमी हिन्दी के महाप्राण कवि निराला के इस नश्वर संसार में पैदा होने का मुहूर्त है। निराला ने अपने रचनाशील जीवन में विपुल और विविध लिखा। वे छायावाद के अप्रतिम कृतिकारों जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और सुमित्रा नंदन पंत के साथ खड़े एक ऐसे विलक्षण कवि रहे जो हिन्दी के आधुनिक परिसर में नई क्रांति के प्रतीक माने जाते हैं। यूँ निराला की साहित्यिक मेधा और उनकी महिमा को कई कोणों से मापा जा सकता है लेकिन उनके पक्ष में सर्वाधिक महत्व की बात ये है कि निराला भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों, इतिहास, दर्शन और विश्व मानवीय दृष्टि से समृद्ध व्यक्तित्व थे। संघर्ष उनकी कुंडली में स्थायी भाव की तरह था। निराला इसी आँच में तपकर जीवन के गीत गाते रहे। कविता-वर दे... के आसपास रहकर निराला की साहित्य साधना को समझें तो अनेक दिशाएँ खुलती दिखाई देती हैं।

यह कविता निराला ने 1936 में लिखी थी। उनके अत्यंत लोकप्रिय संग्रह 'गीतिका' में संकलित यह प्रथम गीत है। शब्द-प्रयोग और लय-गति के विन्यास को देखें तो निराला नए छंद की रचना का साहस और सामर्थ्य प्रकट करते हैं। वे शब्द की आत्मा में बसे गहरे नाद को, उसके अंतः संगीत को पहचानते हैं। वे श्रृंगार, लालित्य और रस-भाव के शिल्पी हैं। कविता कहते-कहते अनुप्रास (यानि एक ही वर्ण-अक्षर या शब्द का बार-बार प्रयोग) की छटा सहज ही उसमें चली आती है। इन तमाम आग्रहों के साथ जब आप इस कविता के पूरे पाठ से गुजरते हैं तो मंत्र की तरह उसका असर शिराओं में प्रवाहित होता है। सचमुच, निराला ने मंत्र ही तो रचा है-

वर दे!
वीणा वादिनी वर दे!!
प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव
भारत में भर दे
काट अंध उर के बंधन स्वर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे
नवगति, नव लय, ताल छंद नव
नवल कंठ, नव जलद मंद्र रव
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर नव स्वर दे।

ग़ौर करने की बात यह भी कि निराला ने इसे उस दौर में लिखा जब पराधीन भारत का आंतरिक संघर्ष स्वाधीनता के सपनों के आसपास परवान चढ़ रहा था। तमाम बंधनों से मुक्ति की कामना के लिए भीतर कसक थी। आज़ादी के आसमान पर अपने अरमानों के इन्द्रधनुषी रंग-बिखेरने की हुमस थी। गति, गौरव और गरिमा के गीत गाने को कंठ मचल रहे थे। ऐसे में निराला की कविता वरदान बनकर प्रकट होती है। पूरे देश की आत्मा की आवाज़ बन जाती है। देवी सरस्वती से यही गुहार कि शापित कालखंड को मथकर नये विहान (सुबह)

का अभ्युदय हो! निश्चय ही यह कविता नयी गति, नई ताल, नए छंद और नए स्वरों को थामती नये उन्मेष की इबारत बनी। आज भी निराला का यह गीत एक आलोकित दीप शिखा की तरह हमारे अंतःकरण के स्याह कोनों को नये उजास से भरता है। शायर- फिल्मकार गुलज़ार कहते हैं कि गीत कभी बूढ़े नहीं होते। उनकी झुर्रियाँ नहीं निकलती। किसी मौजूं सी धुन में जड़ दो तो नग़मा फिर से सांसे लेने लगता है। इस गीत के साथ भी कमोबेश ऐसा ही है। अनेक संगीतकार-गायकों ने अलहदा सी धुनों में इस रचना को पिरोया। संगीत की सोहबत में जैसे इस कविता को नए पंख मिल गये। सारस्वत सभाओं से लेकर स्कूलों में होने वाली नियमित प्रार्थना में इसे एकल और सामूहिक गाने की परंपरा हो गयी। शास्त्रीय राग-रागिनियों और लोक धुनों से लेकर सुगम संगीत में ढलकर निराला का यह छंद देश-देशांतर में स्वच्छंद विचरण करने लगा। किसी कृति के कालजयी हो जाने का उदाहरण इससे बेहतर और क्या हो सकता है!

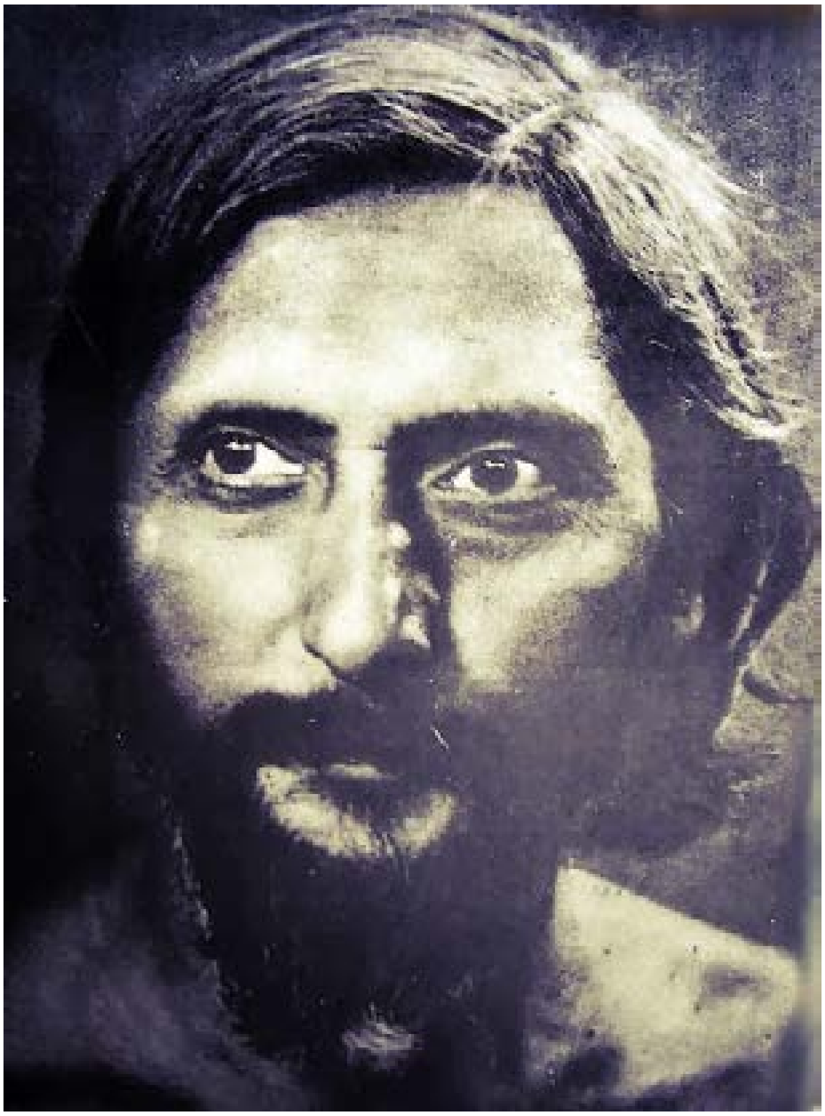

लेकिन इतनी स्वर-सिद्ध कविता रचने का कौशल अगर निराला के पास रहा इसकी एक बड़ी वजह शब्द के साथ-साथ संगीत के प्रति उनकी अगाध आसक्ति थी। उनकी गीतात्मक कविताओं से लेकर छंद मुक्त रचनाओं तक में अंतः संगीत बहता हुआ दिखाई देता है। 'वर दे' और 'बादल राग' से लेकर 'वह तोड़ती पत्थर' तक आते-आते निराला नए प्रयोगों की मिसाल गढ़ते हैं लेकिन कविता का आरोह-अवरोह और उसका ध्वनि सौन्दर्य कभी कम न हुआ।

दरअसल संगीत उनकी चेतना में प्रकृति

प्रदत्त था। हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक डा. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निराला की साहित्य साधना' में निराला के संगीत प्रेम से जुड़े अनेक प्रसंगों की चर्चा की है। एक दिलचस्प वाकया कुछ इस तरह हुआ। पत्नी मनोहरा को एक दिन जब निराला ने तुलसी की 'विनय पत्रिका' का पद "कंदर्प अगणित अमित छवि नव, नील नीरद सुंदरम्" गाते हुए सुना तो उन्हें लगा जैसे गले में मृदंग बज रहा है। जैसे संगीत के सोते हुए संस्कार जाग गये। निराला को लगा कि साहित्य इतना सुंदर है और संगीत इतना आकर्षक! उनकी आँखों ने जैसे नया संसार देखा! कानों ने ऐसा संगीत सुना जो इस पृथ्वी पर किसी दूर लोक से आता हो!

तुलसीदास के इस पद 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भजमन' से उन्हें मोह हो गया। एक अज़ीब विश्रांति और आनंद वे इस छंद में महसूस करते। वे हारमोनियम पर इस पद को गाते तो आपे से बाहर हो जाते। आवेश में उनकी माथे की नसें तन जाती। वे शांत भाव से रामचरिमानस की चौपाइयाँ गाते। उनके स्वर में पिघले हुए सोने का माधुर्य था। 'भैरवी' राग उन्हें अत्यंत प्रिय था। इसी राग में निबद्ध रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता उन्हें प्रिय थी और किसी के आग्रह पर या अपनी रुचि से वे गाने लगते। निराला अक्सर संगीत के शास्त्रीय पक्ष पर भी बहस करते। अपने कोलकाता प्रवास के दौरान उनका परिचय रवीन्द्र संगीत से हुआ। टैगोर की संगीत दृष्टि से वे प्रभावित थे। किसी बंदिश को सुनते हुए सम आने पर चुटकी बजाते। यानी लय-ताल का ज्ञान उन्हें था। वे रवीन्द्र संगीत में

आयीं कुछ पाश्चात्य धुनों के पक्ष में थे क्योंकि वे टैगोर की विश्व दृष्टि का सम्मान करते थे।

निराला के व्यक्तित्व में इन तमाम तत्वों का समावेश था। यह मुमकिन न होता अगर निराला सरस्वती के सच्चे उपासक न होते और सरस्वती की अनन्य कृपा उन पर न होती। वर दे... का लिखा जाना इसी परस्परता की परिणति है।

-विनय उपाध्याय

डॉ. मालती बसंत

ग्वालियर, में जन्मीं और वर्तमान में भोपाल (मध्य प्रदेश) में निवास कर रहीं, डॉ. मालती बसंत सुप्रसिद्ध कहानीकार एवं लघुकथाकार हैं। एम. ए., एम.एड. पी.एचडी. डिग्रीधारी मालती बसंत सहायक संचालक लोकशिक्षण संचालनालय, म.प्र., भोपाल से सेवा निवृत है। कविता, कहानी, लघुकथा, बाल साहित्य, नाटक, समीक्षा, एवं हास्य व्यंग्य सहित उनकी 26 पुस्तकें प्रकाशित। राष्ट्रीय साहित्य पुरस्कार सहित अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओं से सम्मानित/पुरस्कृत।

ईमेल - maltibasant14@gmail.com

सम्मान

-डॉ. मालती बसंत

उसकी शिक्षा समाप्त हो चुकी थी, उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह अब क्या करे? क्योंकि जिस जगह नौकरी के लिये जाता, 'नो वेकेन्सी' की तख्ती उसे मुँह चिढ़ाती। वह डिप्रेशन में आने लगा। उसे अपनी प्रथम श्रेणी एम० ए० की डिग्री व्यर्थ लगती।

उसके एक मित्र ने सलाह दी-

"यार तुम पी-एच० डी० कर डालो, अपने विषय में यहाँ के किसी कॉलेज में पी-एच० डी० किसी ने नहीं की है। तुम्हें पी-एच० डी० का पहला विद्यार्थी होने का गौरव मिलेगा और फिर आजकल प्रोफेसर बनने के लिये यह डिग्री भी आवश्यक हो गयी है।

अपने मित्र की सलाह उसे उचित लगी, वह प्रयास में जुट गया, और दो वर्षों में उसने पी-एच० डी० की डिग्री हासिल कर ली। उसी मित्र ने, जो छात्र नेता भी रह चुका था, दौड़-भाग कर उसके लिये किसी संस्था से 'सम्मान' का आयोजन करवा डाला।

उसे श्रीफल, शाल, प्रतीक चिह्न भेंट किये गये। फिर भी वह संतुष्ट नहीं हो पा रहा था। वह सोच रहा था, 'काश! उसे इस सम्मान की जगह एक छोटी-मोटी नौकरी मिल जाती तो वह अपने को अधिक 'सम्मानित' समझता?' पर ऐसा सम्मान दिलाना उसके मित्र के वश में न था।

-मालती बसंत

तोता रटंत

-डॉ. मालती बसंत

परीक्षा कक्ष में, मैं निरीक्षण कार्य कर रही थी। उस दिन नैतिक शिक्षा का प्रश्न-पत्र था। अपने एक छात्र को नकल करते देखकर “मैंने उसकी उत्तर-पुस्तिका छीन ली और वह पर्ची भी ले ली, जिससे वह नकल कर रहा था।

उस नकल की पर्ची को मैंने पढ़ा, उसमें लिखा था,

“मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, इसलिये उसे ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जो मानवता के विरुद्ध हो। छिपकर कोई काम करना, परीक्षा में नकल करना, दूसरों को धोखा देना भी एक प्रकार से चोरी है।”

पढ़कर मैं आत्मग्लानि से भर गयी।

किसे दोष दूँ?

इस छात्र को?

एक शिक्षिका होने के नाते स्वयं को?

या इस शिक्षा-पद्धति को जिसमें केवल अंक लेने के लिये नैतिक शिक्षा एक विषय भर है?

-मालती बसंत

बिसाइड द कर्टन / ऐक्रेलिक ऑन पेपर / 10x10 इंच
चित्रकार : भविष्या खोखर, 2023

वेद प्रकाश भारद्वाज

हिन्दी साहित्य में पीएचडी डिग्रीधारी तथा पत्रकारिता में सक्रिय वेद प्रकाश भारद्वाज स्वतंत्र लेखक व कलाकार के रूप में कार्यरत हैं। कला, सिनेमा, साहित्य में लेखन। कई साक्षात्कार, लेख, समीक्षाएं प्रकाशित। दो एकल प्रदर्शनी।

ईमेल - bhardwajvedprakash@gmail.com

एक अंतहीन खोज/अम्बादास का कला जगत

-वेद प्रकाश भारद्वाज

"रेखाओं के नर्तन के साथ उनकी कलम कभी अधिक तो कभी कम भार द्वारा ऐसे आकारों का आभास उत्पन्न करती थी जिन्हें प्रथम नजर में जैविक आकार कहा जा सकता है। उनके रेखाचित्रों और तैल चित्रों को देखने पर प्रथम साक्ष्य में प्रतीत होता था मानो भग्न मानवाकार अपने ही भार से अस्त-व्यस्त होकर भारहीन हो अनन्त में तैर रहे हैं।..."

"भारतीय अमूर्त कला को एक पहचान देने में जिन कलाकारों का योगदान रहा उनमें अम्बादास खोरबोगडे का नाम प्रमुख है। उनका जन्म 1922 में अकोला, महाराष्ट्र में हुआ था। 2012 में उनका निधन हुआ। अम्बादास अपनी निराली तकनीक और प्रभाव के लिए मशहूर रहे हैं। उन्होंने कला की शिक्षा सर जे.जे. स्कूल से 1952 में ग्रहण की। ग्रुप 1890 के संस्थापकों में से एक अम्बादास के लिए कला एक ऐसी खोज थी जिसका कोई अंत नहीं था। यह बात उनके चित्रों से समझी जा सकती है जिसमें अर्थ की अनंतता एक प्रमुख गुण रही है। उनके लिए

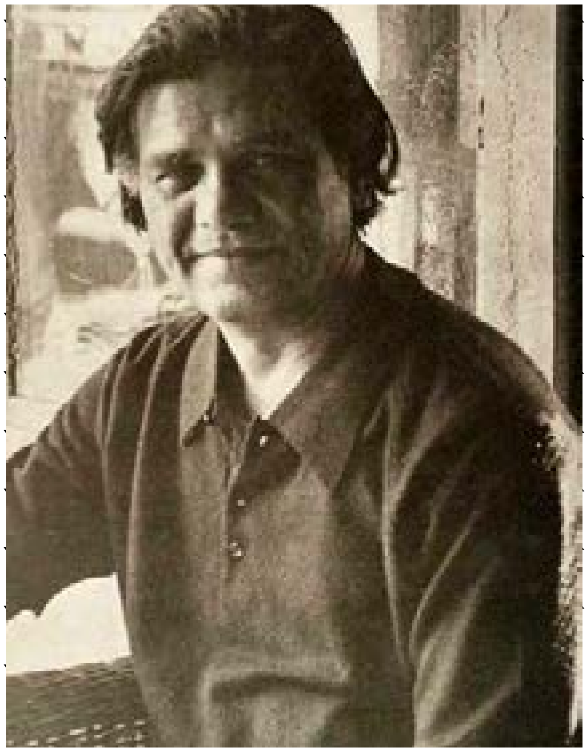

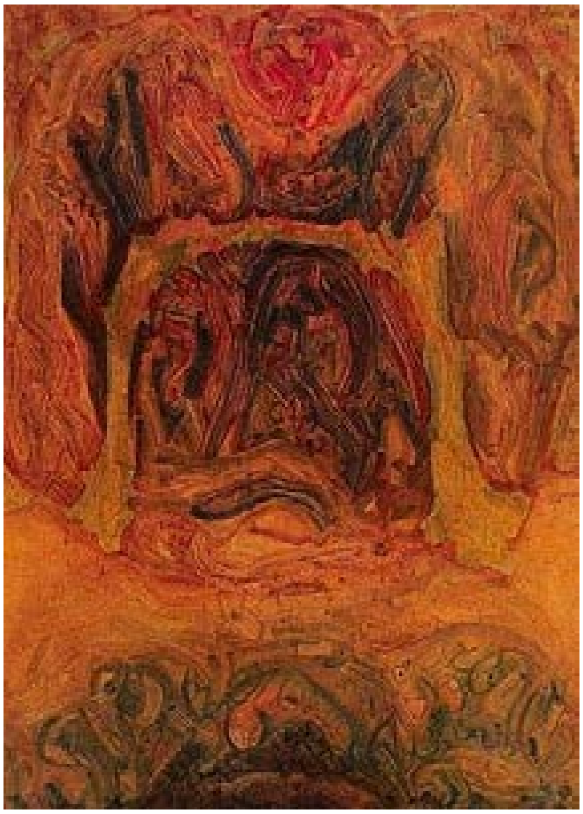

विशेष रुप से रेखाचित्रों में मानव आकारों का आभास मिलता था जो धीरे-धीरे जैसे अनंत में विलीन होते चले गये। इसी विलीनता से उनकी कला में संगीत का तत्व भी आया। ध्वनि न होते हुए भी उनके चित्रों में एक ध्वन्यात्मक आनंद अनुभव किया जा सकता है। संगीत के स्वर नहीं पर सुर उनके चित्रों में सुने जा सकते हैं।

वह 1951 में गठित अप्रतिनिधिमूलक कलाकारों के एक ग्रुप के सदस्य थे। कला उनके लिए निरन्तर खोज और आश्चर्य का सबब रही। और यह खोज रोज-ब-रोज चलती रहती थी। उनके जीवन में शायद ही कोई ऐसा दिन आया होगा जब उन्होंने और कुछ नहीं तो कम से कम रेखांकन न किया हो। रेखाओं के नर्तन के साथ उनकी कलम सतह के एक छोर से दूसरे छोर तक गतिमान रहकर कभी अधिक तो कभी कम भार द्वारा ऐसे आकारों का आभास उत्पन्न करती थी जिन्हें प्रथम नजर में जैविक आकार कहा जा सकता है। उनके रेखाचित्रों और तैल चित्रों को देखने पर प्रथम साक्ष्य में प्रतीत होता था मानो भग्न मानवाकार अपने ही भार से अस्त-व्यस्त होकर भारहीन हो अनन्त में तैर रहे हैं।

उनके तैल चित्रों और रेखाचित्रों में जो अपरिभाषित परन्तु किंचित आभासित आकारों में जो रैखकीय गतिशीलता है वह एक सृजनात्मक ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। उनके चित्रों में जो गतिशीलता और आकारों की भारहीनता है वह एक तरह से मुक्ति का आहलादकारी रूपांतरण कही जा सकती है। मानो जीवन एक तय सीमा में, कैनवास और कागज की सीमा में, विभिन्न

आकार समूह नृत्य कर रहे हैं फिर भी अलग-अलग हैं। आकस्मिकता उनके चित्रों में एक ऐसा रंग भरती है जिसे जीवन का रंग कहा जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे अपने रचना संसार में किसी भी तरह की विवरणात्मकता को जगह नहीं देते थे फिर भी यदि उनके अनगढ़ से आकारों में कहीं मानवीय आकारों का आभास होता था तो इसलिए कि वे कला को जीवन से अलग नहीं बल्कि उसके साथ मानते थे। यही कारण है कि उनके लिए कला एक तरह से उल्लास का सृजन थी। वे जीव-जगत को उसके साक्ष्य रूप में नहीं बल्कि उसके विस्तारित सार रूप में रचते रहे। उनके यहाँ रेखाएँ और तूलिकाघात कभी समानान्तर तो कभी एक-दूसरे को काटते हुए, कभी गहन तो कभी हल्के रूप में एक-दूसरे पर आच्छादित मिलती हैं, मानो वे आलिंगनबद्ध हैं।

चित्र संयोजन के औपचारिक अनुशासन के लिए उनके यहां कोई जगह नहीं थी। बल्कि कहा जा सकता है कि उनके अपने जीवन में भी औपचारिकताओं के लिए कोई स्थान नहीं था। जब भी वे दिल्ली आते थे, अक्सर किसी न किसी कला दीर्घा में उनसे मिलना होता ही रहा बिना किसी औपचारिकता के। वे सभी से ऐसे मिलते थे मानो पुराने परिचित हों। उनसे उनकी कला से लेकर समकालीन कला तक पर कई बार अनौपचारिक बात भी होती रही। युवा कलाकारों का काम देखना और उन्हें सराहना उनके चरित्र का ऐसा पहलू है जो उन्हें सभी कलाकारों के साथ सहज ही जोड़ देता था।

उनके चित्रों और रेखांकनों में आवर्तन और गहरी-हल्की रंगत युक्त भार कुछ लोगों को कायनेटिक आर्ट की याद दिलाता था। हो सकता है कि अपनी विदेश यात्राओं में उन्होंने कायनेटिक आर्ट का अध्ययन किया हो और उसका कुछ प्रभाव उनपर पड़ा हो परन्तु उनके काम का गहरा रिश्ता तो भारतीय गुहा चित्रों से और आदिवासी कला से था। उनके अमूर्त आकार गुफाओं में किसी अनाम कलाकार द्वारा उकेरे गये चित्रों या किसी आदिवासी कलाकार के औचक कौतुक की तरह प्रतीत होते हैं। और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि अम्बादास खुद भी कला को एक आश्चर्य की खोज कहा करते थे। एक ऐसी खोज जो उनके लिए शायद ही कभी समाप्त होती हो। मुझे याद है कि एक बार अनौपचारिक बातचीत में उन्होंने कहा था कि उनके लिए कला एक अनवरत यात्रा है जिसमें वे प्रतिदिन कुछ खोजने की कोशिश करते रहते हैं।

विषय तत्व और वस्तु तत्व का उनके

कला जीवन में कोई महत्व नहीं था। वस्तु तत्व या अन्य आकार तो उनके लिए एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए प्रस्थान बिन्दु की तरह थे। उनकी कला को समझने के लिए भी हमें इन प्रस्थान बिन्दुओं के अंतराल में जो घटित हुआ है और जो होने वाला है उसे देखना होगा। उनके चित्र एक तरह से ऊर्जावान शक्ति के विस्फोट कहे जा सकते हैं। अपने चित्रों में अंतिम छवि को लेकर वे गहन आसक्ति रखते थे। वैसे हर कलाकार रखता है परन्तु अमूर्त चित्रकारों के साथ यह भी होता रहता है कि वे कई बार चित्र रचना में अंतिम परिणाम को लेकर बहुत निश्चिंत नहीं भी रहते परन्तु अम्बादास के साथ ऐसा नहीं था। उनके चित्रों को देखते हुए लगता है कि जैसे वे अंतिम निष्कर्ष को जानते हुए पेंट कर रहे थे। इस तरह वह आकस्मिकता को भी संतुलित कर लेते थे। चित्र को उसकी मंजिल तक पहुंचाने के लिए यह जरुरी है कि कलाकार यह जानता हो कि उसे क्या करना है और क्यों करना है, साथ ही उसे यह भी पता होना चाहिए कि कहां समाप्त करना है। अम्बादास को यह बखूबी आता था। शुरुआती दौर में उन्होंने नेगेटिव स्पेस का खूब इस्तेमाल किया पर बाद में उनके चित्र, विशेष रुप से कागज पर रचे चित्रों में उन्होंने नेगेटिव स्पेस को एक तरह से हटा दिया। उनके चित्र एक तरह से भरे-पूरे चित्र हो गये। इसे जीवन में सक्रियता के महत्व के रुप में भी समझा जा सकता है। या इसे हम किसी संत के निरंतर मंत्रोच्चार के रुप में भी

“उनके काम का गहरा रिश्ता तो भारतीय गुहा चित्रों से और आदिवासी कला से था। उनके अमूर्त आकार गुफाओं में किसी अनाम कलाकार द्वारा उकेरे गये चित्रों या किसी आदिवासी कलाकार के औचक कौतुक की तरह प्रतीत होते हैं।...

समझ सकते हैं। उनके कला जगत में प्रवेश करें तो पाते हैं कि वे किसी संत की तरह एक ही मंत्र को निरन्तर जपते हुए उसे साधने में निमग्न थे। उनके चित्रों में एक तरह की बुनावट का अहसास भी होता है। लगता है जैसे वे रेखाओं या टैक्सचर को किसी बुनकर की तरह एक आकार में बांध रहे हैं। ऐसा शायद इसलिए था क्योंकि उनका बुनकरों से संबंध था। उन्होंने बुनकरों के साथ काम किया था और उन्हीं से उन्होंने कला में जीवन को बुनने का महत्व ग्रहण किया था। यही कारण है कि उनके चित्रों को देखते हुए अक्सर कबीर याद आते हैं।

अम्बादास उन बिरले कलाकारों में से एक थे जिनके रचना संसार को शब्दों में बांध पाना बेहद मुश्किल है। उनकी तकनीक को लेकर अक्सर युवा कलाकार प्रश्न करते रहते हैं। बहुतों ने कोशिश भी की परन्तु कामयाब नहीं हो पाये। कारण, ऐसा करते समय वे यह भूल गये कि प्रत्येक कलाकार अपनी मानसिक और भावनात्मक क्षमताओं से अपनी तकनीक विकसित करता है और यह भी कि तकनीक से कला नहीं होती। हां, हम यह कह सकते हैं कि अम्बादास ने अपनी तकनीक को ठीक उसी तरह साध लिया था जैसे कोई संत मंत्रों को साध लेता है।

-वेद प्रकाश भारद्वाज

चित्र और चित्रकार

चित्रकार : भविष्या खोखर

Bhavishya Khokhar

Title: Open window / Acrylic on paper,

12x15 inch, 2023